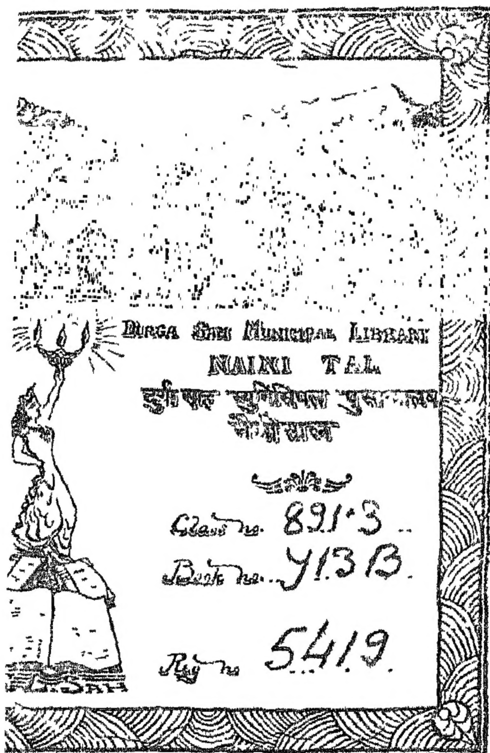

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891·3
Book no. Y13B
Reg no. 5419

# बर्फ़ के हीरे

# बर्फ़ के हीरे

सम्पादक
सत्येन्द्र शर्मा एम. ए.

साहित्य सदन
पलटन बाज़ार, देहरादून

प्रकाशक :
साहित्य सदन,
पलटन बाज़ार,
देहरादून ।

पहला संस्करण
अप्रैल १९५९
मूल्य—२·५०

मुद्रक :
प्रभात प्रेस,
मेरठ ।

कहानी की कहानी का प्रारम्भ मानव की उत्पत्ति के साथ हुआ और सम्भवतः इसका अन्त सृष्टि की समाप्ति के साथ ही होगा। अभिव्यक्तिकरण की भावना ने जिस समय भी चर्म सीमा को छूआ होगा उसी समय मानव के मस्तिष्क में कहानी प्रस्फुटित हुई होगी। कहानी का प्राथमिक रूप कथा अथवा गाथा है जो आज साहित्यिक श्रेणी में आकर लगभग अपना रूप बदल चुकी है। कथा अथवा गाथा-साहित्य में, सत्य एक खोजने की वस्तु होती थी किन्तु आज आधुनिक कहानी के बारे में यहाँ तक कहा जा सकता है कि वह इतिहास के अति समीप आ बैठी है। इतिहास में नाम और तिथि के अतिरिक्त सम्भवतः सभी कुछ असत्य हो जैसे १८५७ का इतिहास! किन्तु कहानी में नाम और तिथि के अतिरिक्त सभी कुछ सत्य है।

हिन्दी साहित्य में कहानी का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत हो चुका है। आधुनिक कहानी टेकनीक में इतनी विविधता तथा अनेकरूपता आ चुकी है कि हम उत्कृष्ट शैली के अतिरिक्त प्रमाणिक रूप से यह नहीं कह सकते कि अमुक कहानी उत्तम है अथवा निकृष्ट। आज तक कहानी टेकनीक में कथानक का बड़ा भारी महत्व रहा है, यहाँ तक कि पुरानी कहानियों में तो कथानक में कहानी की सभी श्रेष्ठतायें छुपी होती थीं। किन्तु आज कहानी टेकनीक में कथानक का विशेष महत्व नहीं रहा। एक साधारण सी घटना पर भी उत्कृष्टतम कहानी लिखी जा सकती है। पिछले वर्ष, संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ मेरी नजर से गुजरीं तो मैंने पाया कि कथानक तथा घटनाक्रम का कोई विशेष महत्व ही नहीं रहा। इस नवीन टेकनीक में यदि श्रेष्ठता है तो यह कि कथानक आपको बतला भी दिया जाये तो भी आप उस

पर कहानी न लिख सकेंगे। आप यहाँ तक भी कहने के लिए तैयार होंगे कि इस कथानक अथवा घटना पर कहानी लिखी ही नहीं जा सकती। आपकी कहानी में कथानक नहीं बोलता कथाकार बोलता है, उसकी प्रतिभा बोलती है, उसकी अन्तर-विश्लेषणात्मक शैली बोलती है। हम जब कहानी पढ़ चुकते हैं तो हमें कहानीकार की कला का स्पष्ट आभास होने लगता है और हम कह उठते हैं कि किसी वस्तु को देखने के लिए जितनी तीव्र दृष्टि कलाकार के पास है सर्वसाधारण के पास कदापि नहीं। कभी कथानक कलाकार की लेखनी को सबल तथा प्रवाहयुक्त बनाता था किन्तु आज कहानीकार स्वयं कथानक को शक्तिशाली, प्रवाहयुक्त तथा प्रभावोत्पादक बनाता है। आज का कथाकार बाह्य चित्रण की अपेक्षा अन्तरविश्लेषण को अधिक महत्व देता है। इसी लिए उसका कथानक साधारण और पात्र सीमित होते हैं।

'बर्फ के हीरे' की कहानियाँ एक-एक करके सभी मेरी नजरों से गुजरीं। मुझे लगा जैसे आधुनिक युग की कहानी टेकनीक के सभी रूपों को दृष्टि में रख कर इस संग्रह के लिए कहानियाँ जुटाई गई हैं। यद्यपि संग्रह के सभी लेखक नये हैं या यूँ कहिये कि इस संग्रह में जिसने भी लेखनी उठाई अपरिचित हैं किन्तु कथाभिव्यक्ति में परिचित अपरिचित का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। एक ही संग्रह में कहानी टेकनीक के इतने रूप संगृहीत करना सम्पादक की चयन-शक्ति तथा टेकनीक-ज्ञान का पूर्ण परिचय देता है। इस प्रकार का संग्रह, हो सकता है, हिन्दी साहित्य में यह पहला हो। संग्रह की रचनायें पढ़ने के पश्चात सम्पादक का उद्देश्य स्पष्ट विदित हो जाता है।

इस कहानी संग्रह के सभी लेखकों की रचनायें पढ़ने के पश्चात मुझे लगा जैसे भविष्य इन कलाकारों की ओर निहार रहा हो। संग्रह में कौन सी कहानी श्रेष्ठ है यह कहना कठिन है क्योंकि इस में हीरे नहीं जवाहरात हैं; जिनमें हीरा, पन्ना, लाल, नीलम सभी कुछ हैं।

हर कहानी अपने बारे में स्वयं निर्णय देती है। संग्रह के अन्त में संग्रह के शीर्षक पर लिखी गई लघु-कहानियाँ एक अजीब सा ही वातावरण पैदा करती हैं। यहाँ, "एक में अनेक और अनेक में एक" वाली कहावत चरितार्थ होती है। संग्रह के नाम को सार्थक करने का ढंग भी खूब है। हर वस्तु में नवीनता है; नवीन रक्त में नवीनता आवश्यक जो है। इस संग्रह में कहानियों के जो प्रकार मुझे दिखाई दिये वे हैं—व्यंग्य, स्कैच, फेन्टासी, मनोवैज्ञानिक, साधारण सामाजिक, समस्या प्रधान तथा ठेठ काव्यमय। सब कलाकारों की अपनी-अपनी शैली है, अपनी अपनी प्रतिभा है और है अपना-अपना विश्वास।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस संग्रह के लेखक अथवा 'हीरे' साहित्य में अपना मूल्य बढ़ाने और स्थान पाने के लिए साधना की तराश द्वारा अपने में आभा उत्पन्न करेंगे। हीरे का मूल्य कान में भी कम नहीं किन्तु तराश के बाद उसके मूल्य में संसार की प्यास छुपी होती है।

नवीन प्रकार के इन "बर्फ़ के हीरों" को प्रस्तुत करने के लिए सम्पादक महोदय बधाई के पात्र हैं। आशा है पाठकगण इस संग्रह का स्वागत करेंगे और आलोचक इन हीरों पर पड़ी धूल (यदि कहीं हो तो उसे) साफ करने में न झिझकेंगे।

टाउन्जएण्ड, शिमला —रामदयाल 'नीरज'

३० माघ, शक १८८०

## सम्पादकीय

'बर्फ के हीरे' नवोदित कहानीकारों की बाईस लघु-कथाओं का संग्रह है जिसमें प्रत्येक लेखक की दो दो कहानियाँ संगृहीत की गई हैं।

सभी लेखकों द्वारा इन कहानियों के अन्त में, "बर्फ के हीरे" शीर्षक के अन्तर्गत लिखी गई लघु-कथायें इस संग्रह की अपनी विशेषता है। किसी शीर्षक से बन्ध कर लिखने के लिये, वह भी १५-२० पंक्तियों में, नियन्त्रण तथा अनुशासन की अपेक्षा होती है। इन दोनों बातों का निर्वाह करने में लेखक कहाँ तक सफल हुए हैं इसका निर्णय पाठक तथा आलोचक ही करेंगे।

श्री रामदयाल 'नीरज' सदैव नवोदित लेखकों तथा कलाकारों का पथ-प्रदर्शन करते आए हैं और इस बार भी, प्रस्तुत संग्रह की भूमिका लिखकर, 'नीरज' जी ने अपने कर्तव्य का ही पालन किया है।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस संग्रह के सभी लेखक, जिनमें से अधिकांश हिमाचली हैं, निकट भविष्य में साहित्य जगत में अपना स्थान बना लेंगे।

—सत्येन्द्र शर्मा एम० ए०

शिवरात्रि २०१५ वि०
'हिम प्रस्थ' कार्यालय
कनैडी काटेज
शिमला—४

## अनुक्रमणिका

# देवेन्द्र कुमार बन्सल





आप हिमाचल प्रदेश के कुछ एक विख्यात कहानीकारों में से एक सुप्रसिद्ध तरुण कहानीकार हैं। २५ अगस्त १९३७ को शिमला हिल्ज के सुन्दर एवं प्रसिद्ध स्थान कण्डाघाट में आपका जन्म हुआ। शिक्षा एवं साहित्य की ओर रुचि में इन्हें आज तक अपने पिता चौधरी श्रीराम बंसल का आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन मिलता है। इसी आशीर्वाद और अपनी लग्न के कारण ही तो देवेन्द्र इतनी छोटी आयु में राजनीतिशास्त्र में एम. ए. कर गए हैं।

१९५६ में देहरादून के 'वेनगार्ड' में प्रकाशित 'मयूरकण्ठी' के पश्चात् जब इन्होंने अपनी दूसरी कहानी 'डाइवर्जन रोड' लिखी, जो 'शक्ति' के कहानी विशेषांक में छपी, तो देश के कोने कोने से आपको बधाई मिली। तब से उत्साह और भी बढ़ा और दर्जनों कहानियाँ अब तक विभिन्न पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी बहुत सारी कहानियों का प्रसिद्ध कहानीकारों ने उर्दू तथा बंगला में अनुवाद भी किया है।

आपको स्वयं भी प्रसिद्ध हिन्दी कहानीकारों की कहानियों का उर्दू में अनुवाद करने का शौक है।

आप छोटी-छोटी कहानियाँ लिखते हैं जिनमें कल्पना कम और जीवन की वास्तविकता अधिक झलकती है।

# दून-व्यू होटल

मुझे याद नहीं कि कितनी पूनम की रातों में मेरा मन विचार-तरंगों के थपेड़े खाकर अनमना हो जाता था। आई शरत् की पूर्णिमा—प्रातःकाल से ही रात्रि में निकलने वाले चाँद की कल्पना करते करते एक आकृति बनकर आँखों में झूलने लगी। उस आकृति के साकार दर्शनों के लिए मन अधीर होने लगा।

कुछ काल बाद—रात्रि के उड़ान का समय समीप देख अंशुमाली ने अस्त-व्यस्त किरण-जाल को सावधानी से समेटना आरम्भ किया। दासी संध्या आई और सूचना देकर चली गई कि रात्रि की उन्मुक्त उड़ान के लिए आकाश-पथ निर्बाध है। और रात्रि के पंख खुलने लगे, और साथ ही मन की आकुलता मुखर होने के लिए विकल हो उठी। तभी, आधी रात गये, हर पूनम की रात की भाँति, बांसुरी के सुर तैरते हुए मेरी खिड़की की ओर बढ़ने लगे, जैसे मुझसे दो बात करना चाहते हों। सब छिद्रों में जैसे टीस टपक रही हो। अनायास ही मन गुरुदेव टैगोर की पंक्ति गुनगुनाने लगा—

"कौन छाया ते कौन उदासी,
दूरे बाजांय अलस बांशी;
मने हयकार मनेर वेदना केन्दे बेड़ार बांसीर गाने"

(वह उदासीन कौन है—दूर न जाने किस छाया में अलग भाव से बंसी बजा रहा है, जी में आता है—हो न हो यह किसी के मन की वेदना होगी बांसुरी के गीत के साथ रोती फिर रही है—)

गीत की गुनगुनाहट धीरे-धीरे मन और मस्तिष्क को प्रभावित करने लगी। परस्पर कहा सुनी हुई किन्तु फिर मस्तिष्क कुछ समझौता कर गया। फलस्वरूप, मैं स्वर का पीछा करने के लिए निकल पड़ी कि

स्वर के स्रोत को पा सकूँ। पीछा करते-करते मैं पहुँच गई तालाब के किनारे बैठे हुए एक व्यक्ति के समीप। वह अपनी साधना में रत था। मैंने उसका ध्यान भंग करने के विचार से गुनगुनाया—

"उड़ गया भंवरा कली उदास !
कली उदास ! कली उदास !!"

—मैं पूछ सकता हूँ कि इतनी रात गये इस नीरव एकान्त में आने का क्या कारण है ? और तुम कौन हो देवी ?

—ताल हूँ तेरे सुरों की, मधुर तेरी कल्पना मैं !
व्यथित मन की शान्ति हूँ, प्राणवंती सांत्वना मैं !!—

हाँ यही है मेरा परिचय। कारण भी तुम समझ गए होंगे ? किन्तु तुम कौन हो ? सत्य कहो ? हर पूनम की रात को बांसुरी के सुर मेरे पास पहुँचते और कुछ कह जाते। आज मैं उन सुरों की कहानी जानने आई हूँ !

"सुनिये, क्या नाम, हाँ नाम तो बताया ही नहीं, कल्पना कहूँ या सान्त्वना ! पहिले विचार लीजिए, सत्य कभी-कभी कड़वा होता है। कहीं तुम्हारी सहानुभूति सत्य के सामने लड़खड़ा न जाय ?"

"तुम कहो तो सही, कब तक यूँ पीठ फेरे ही बैठे रहोगे ? आखिर जिसके संगीत ने मेरे रोम-रोम में अपना असर फैला दिया है उसके दर्शन भी कर लूँ।"

"नहीं देवी, सत्य कभी-कभी अप्रिय होता है। तुम्हारे लिए खुद को सम्भालना कठिन होगा।"

"तुम्हें बताना ही होगा ! आखिर कब तक मैं तुम्हारी बाँसुरी के सुरों पर अपना जीवन रिसाती रहूँ। सत्य कितना भी कठोर सही, तुम तो कठोर न बनो ?"

उत्तर में उसने एक कंकर तालाब में फेंका, कुछ लहरियाँ उठीं जैसे उसके मन को प्रतिबिम्बित कर रही हों; फिर उसने मेरी ओर मुँह फेरते हुए कहा—

"शैफाली !"—और नाम सुनते ही मैं चौंक पड़ी तथा अपने को संभाल, उठने को तैयार हुई कि उसने फिर पुकारा—"शैफाली ! तुम मेरी बात सुने बिना ही जा रही हो ? मैंने पहले ही कहा था—'सत्य' ......" और बात कहते कहते उसे खांसी ने दबा लिया।

"तुम अभी भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रहे हो पवन ! मैं मजबूर हूँ पवन ! मुझे नहीं मालूम था कि तुम अभी तक पगलाये हुए हो ? तुम अभी चले जाओ।"

"चला जाऊँगा शैफाली ! यह भी सत्य है कि मैं पागल हूँ लेकिन यह बिल्कुल झूठ है कि मैं तुम्हारा पीछा कर रहा हूँ ! मुझे मालूम नहीं था कि तुम यहीं समीप रहती हो। पीछा करती हुई तो तुम आई हो ?"

"मैं इसलिए नहीं आई थी कि यहाँ तुम बैठे होंगे। बाँसुरी की दर्दीली तानें मुझे यहाँ खींच लाई। मैं सोचती रहती थी बाँसुरी के सुरों में मुखरित होने वाली वेदना के बारे में !"

"तो बाँसुरी से मुखरित वेदना ने तुम्हें यहाँ तक खींच लिया ? बाँसुरी के सुरों से तुम्हें प्यार है ! और जिसकी वेदना उन सुरों में बसी हुई है, उससे फिर नफरत क्यों कर ?"

"पवन ! यह सत्य है कि बाँसुरी से निकलने वाली वेदना के प्रति मेरी सहानुभूति रही और वेदना के मूल स्थान की जिज्ञासा भी बराबर बनी रही। किन्तु हमारे तुम्हारे बीच समाज के अन्ध-विश्वास दीवार बने हुए हैं। मैं नारी हूँ ! अबला तो नहीं, किन्तु पुरुष के विश्वस्त सहारे की आशा रखती हूँ ! बेचैन मैं भी हूँ। तुम्हारी बाँसुरी की धुन सुनकर मेरे नूपुरों की झन्कार भी शिथिल पड़ जाती है !

"नूपुरों की झन्कार ?"—पवन ने जिज्ञासापूर्ण ढंग से पूछा।

"हाँ, पवन ! मैं सामने नीली रोशनी वाले होटल में नृत्य किया करती हूँ। पेट के लिए करना पड़ता है। जिस दिन तुम्हारे पिता जी ने शादी के लिए इन्कार किया था, जीवन में उठने वाली तूफान की

सूचना मुझे उसी दिन मिल गई थी और मैं गाँव छोड़ कर इधर चली आई थी। फिर एक दिन अखबार में पढ़ा कि होटल में एक "रिसैप्शनिस्ट" का स्थान खाली है। मैं मैनेजर के पास पहुँची। मैं वह पद पा गई। एक दिन उसने मुझे घूरते हुए कहा—"कामिनी, तुम्हारी सुन्दरता ने एक नया आइडिया दिया है। तुम्हारा यह नन्हा-सा आकर्षक तिल अनेक मनचले नवयुवकों के सपनों का साहिल बनकर होटल को मालामाल बना सकता है। तुम नृत्य की शिक्षा शीघ्र ही प्राप्त कर लो। मैं भारतीय नृत्यों के कुशल कलाकार मिस्टर रंगमचारी को फोन किए देता हूँ!"—और मैं कुछ ही काल में नृत्य प्रवीणा हो गई। इसी बीच श्री रंगमचारी ने मुझ पर डोरे डालने शुरू किए। उसकी ललचाई नज़रें मुझ पर गड़ी रहने लगीं। एक दिन अवसर पाकर श्री रंगमचारी ने विवाह का प्रस्ताव पेश किया। "बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम"—मैं मन ही मन हँसी और फिर भविष्य की एक झलक मेरी आँखों के आगे घूम गई। मैंने विवाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया। मिस्टर रंगमचारी इस तमाचे से विकल हो गए और एक दिन उन्होंने चोरी के अपराध में मुझे गिरफ्तार करा दिया। होटल के मैनेजर मिस्टर डी० कॉस्टा ने जमानत दी। उनके अहसानों का बदला आज तक मैं उनकी धर्मपत्नी बनकर चुका रही हूँ।"

"मिस्टर डी कॉस्टा की पत्नी, शैफाली ?"—पवन बाबू ने साश्चर्य कहा।

"शैफाली नहीं! कामिनी! शैफाली उसी दिन मर चुकी थी जिस दिन उसकी आशाओं-आकांक्षाओं पर पाला पड़ गया था। अब तो मिसेज डी कॉस्टा हूँ मैं!"

"डी कॉस्टा…कामिनी…मिसेज डी कॉस्टा…शैफाली…" पवन बाबू बुदबुदाये।

"आप शायद किसी उलझन में पड़ गए हैं?" मैंने उन्हें चिन्तित-सा देखते हुए पूछा और उत्तर में उन्होंने दोहरा दिया—"डी कॉस्टा…

कामिनी…"

"आप डी कॉस्टा को जानते हैं ?"

"हूँ ! नहीं !"

"आप कुछ छिपाने का प्रयत्न कर रहे हैं पवन बाबू !"

"शैफाली ! उसी डी कॉस्टा के कारण मैं तुम्हारे सौंदर्य की ज्योति से वंचित हूँ। मेरी आँखें……हाँ-हाँ मेरी आँखें "दून-व्यू होटल……" कहते कहते पवन बाबू काँपने लगे।

"दून-व्यू होटल में तुम्हारी आँखें…?" मैंने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा।

"हाँ शैफाली ! उस होटल की चकाचौंध ने मेरी आँखें छीन लीं। मिस्टर डी कॉस्टा ने मेरी आँखें…नहीं नहीं तुम्हारे पति इतने बुरे नहीं हो सकते। मेरी तक़दीर ही…?"

"पवन बाबू, माना कि वे मेरे पति हैं। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि परिस्थितियों ने मुझे उन्हें अपना पति स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया। तुम्हारी स्मृति भी उस चिंगारी की तरह चेतन थी जिस पर समय की राख पड़ गई थी। आज पवन ने उस राख को उड़ा दिया। किन्तु, यह तो बताओ कि आप डी कॉस्टा को जानते हैं ?"

"शैफाली अब से दो वर्ष पूर्व, मैं इसी होटल में—इसी की अन्डर-ग्राउन्ड शाखा में नौकर था। उस शाखा का कार्य-विधान तुम्हारे अपर ग्राउन्ड से बिल्कुल भिन्न था। हमें ऊपरी शाखा की कुछ खबर नहीं रहती थी, इसी से तुम्हारे बारे में भी कोई सूचना नहीं मिल सकी। वहाँ पर जूआ, कच्ची शराब और अफीम का व्यापार होता था। अब भी होता है। पैसे के लालच में काम तो शुरू कर दिया था किन्तु मन ने गवाही नहीं दी थी। एक दिन मन में अन्तर्द्वन्द्व छिड़ा, मैंने ऐसा काम करने से इन्कार कर दिया। आदेश ठुकराने के अपराध के दण्ड स्वरूप मेरी आँखों में गर्म सलाखें खोंप दी गईं। पुलिस को यदि मैं

सूचित करता तो शायद मुझे भी जेल में सड़ना पड़ता। नौकरी छूटने पर मैं इसी कस्बे में बसा हूँ।

तब से मैं पास वाले शिवजी के मन्दिर में रहता हूँ। सुबह-शाम भजन पाठ करके रायबहादुर धर्मस्वरूप जी की ओर से ३० रु० मासिक तथा दोनों समय का भोजन पाता हूँ। प्रभु के चरणों में जीवन व्यतीत होता आ रहा है। फिर भी, तुम्हारी याद की कसक भी मन व्यथित किये रहती है। तुम्हें याद है, शरत्-पूर्णिमा के दिन मेरे पिता जी ने मेरे विवाह का प्रस्ताव ठुकराया था। मैंने भी विवाह नहीं किया। तब से एक-एक पूर्णिमा की रात यहाँ बिताता हूँ, शरत्-पूर्णिमा की इन्तजारी में।"

"सो तो ठीक है, मुझे भी रायसाहब से मिला दो। मैं भी शिवशंकर के चरणों में जीवन के शेष दिन रूखी-सूखी खाकर बिता देना चाहती हूँ।"

दूसरे दिन मन्दिर में रायसाहब ने १०१ ब्राह्मणों को भोजन खिलाना था, उसी अवसर पर पवन बाबू ने मुझे आमन्त्रित किया। मैं सुबह ही पहुँच गई। मन्दिर में शंख, घण्टों-घड़ियालों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं। उसी गूँज में एक ध्वनि और आकर मिल गई; वह ध्वनि थी कार के हार्न की। तभी पवन बाबू मेरे समीप आए। और बोले—"दानवीर रायसाहब आ रहे हैं; आज भजन-गान में तुम भी साथ देना।" 'सेठ जी की जय' ब्राह्मणों ने जयजयकार किया। मैं चौंक उठी। मैंने पवन बाबू से पूछा—"ये कार वाले ही हैं दानवीर सेठ धर्मस्वरूप" और मेरे मुख से कहकहा निकल गया।

"क्या बात है शैफाली ?"

तुम्हारे दानवीर सेठ ही "दून-व्यू होटल" के मालिक नगर के दो जूआ-घरों के साझीदार और कामिनी के दीवान सेठ चंचल किशोर हैं! अच्छा पवन बाबू, मैं तो अपने मन्दिर की ओर चली, लक्ष्मी देवी के मन्दिर में।

शाम को "दून-व्यू होटल" में मेरे नृत्य का विशेष प्रोग्राम था। ७ बजे का समय—होटल में नृत्य आरम्भ होने को था, बाहर से गीत की आवाज सुनाई दी—

"अरे कहीं देखा है तुमने मुझे प्यार करने वाले को;
मेरी आँखों में आ फिर आँसू बन ढरने वाले को।"

होटल की भीड़ सड़क पर आ चुकी थी। गीत के समाप्त होते होते गायक की टोपी नोटों से भर चुकी थी। गायक ने धनराशि कोट की पाकेट में डालकर टोपी सीधी की थी; मैंने अपना कंगन डाल दिया। कंगन को टटोल-टटोल कर देखने के बाद, उसने कोट से सब धन निकाल कर मेरे आँचल का छोर पकड़ते हुए कहा—"लक्ष्मी की पुजारिन, लो अपनी भेंट; पर यह होटल छोड़ दो। मैं अपने गीतों से तुम्हारी खुशी का हर सामान जुटा दूँगा।"

पवन और मैं चल पड़े मन्दिर की ओर। "दून-व्यू होटल" का भव्य भवन मौन खड़ा रहा। शायद अपने अण्डर ग्राउन्ड-चरित्र पर लज्जित था।

पग मन्दिर की ओर बढ़ते जा रहे थे। पीछे से, रिकार्डिंग की आवाज़ सुनाई दे रही थी—

"कौन नगरिया जाओ रे, बन्सी वाले !
कौन नगरिया जाओ, हाँ हाँ !"

हम बढ़ते जा रहे थे। हमारे जीवनाकाश में आशा का पूरा चाँद आज ही चमका था।

---

# नई शादी

विवाह के सम्बन्ध में प्रोफेसर साहब के विचार एक बार फिर तेजी से बदल रहे थे। उनका दृष्टिकोण अब कुछ दार्शनिक हो चला था। १६ वर्ष तक भ्रामरी प्रवृत्ति के रसिक समर्थक रह चुकने के उपरान्त, अब कवि-हृदय प्रोफ़ेसर किसी एक का होकर रहने के क़ायल होते जा रहे थे। यह परिवर्तन कुछ ऐसा ही था जैसे कि हिन्दी साहित्य में छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवादी एवं यथार्थवादी विचारधारा का आगमन।

आज से १६ वर्ष पूर्व दुनिया प्रोफेसर साहब को "मास्टर जी" के नाम से जानती थी। छोटी-मोटी ट्यूशन के सहारे भोलानाथ अपनी इन्टर की पढ़ाई कर रहा था। जैसे-तैसे उसने इन्टर पास किया। उसी वर्ष उसकी शादी भी हो गई। भोला बड़ा परिश्रमी था, ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की लग्न थी, और प्रतिभा भी थी। किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। नगर में बी. ए., एम. ए. की पढ़ाई के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी, बाहर जाकर शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाओं का जुटाना उसकी सामर्थ्य से बाहर था। इसलिए तब पढ़ाई का विचार छोड़ देना पड़ा। फिर अब वह गृहस्थी वाला था। अतः उसने अपने जिले के सैनिक स्कूल में अध्यापन कार्य आरम्भ कर दिया।

इसी कार्य के आरम्भ के साथ ही उसके जीवन में एक नये कथानक का आरम्भ हो गया। शादी के दो वर्ष बाद पता चला कि भोलानाथ की स्त्री मायके चली गई और फिर लौटकर नहीं आई। बीच में कई बार बुलाने की बात चली, अन्य रिश्तेदारों तथा मित्रों ने भी कोशिश की, किन्तु कोई फल नहीं निकला। इन चर्चाओं में अनेक बातों पर

प्रकाश पड़ा, किन्तु दोष किसका था, इस रहस्य का उद्घाटन न हो सका। भोलानाथ को भी इस 'तनाव' से मानसिक दुःख, जो कि प्रेम-सूत्र के टूटने से हो सकता है, तो उतना नहीं था जितना कि इस बात का गम था कि गाँठ का रुपया भी काफी निकला और हाथ का तोता भी उड़ गया। लेकिन इस तोते के उड़ जाने के बाद जहाँ उसे स्वच्छन्द वातावरण मिला, वहाँ पिंजरा इस बात का अनुभव करने लगा कि यह आवश्यक नहीं कि उस पिंजरे में एक ही पंछी सदा बसा रहे। क्यों न वह सौभाग्य प्राप्त करे कि नित नये पंछियों का वास रहे। अगर पिंजरा भोलानाथ की शिकारी अथवा भ्रामरी प्रवृत्ति का प्रतीक मान लिया जाय तो पाठक कथाकार का आशय समझेंगे। तो भोलानाथ भी शिकारी बन गये। "समय जात लागत नहीं बारा!" और होते होते वह समय आ गया कि दुनिया वाले तो मास्टर जी को अभी कुँवारा समझते ही थे, किन्तु अब मास्टर जी भी प्रेम-जाल के फैलाने के चक्कर में जानकर इस तथ्य से अनभिज्ञ हो जाना चाहते थे कि वे विवाहित हैं। अस्थायी रूप से उन्हें इस योजना में सफलता भी मिली। इसी योजना के साथ-साथ उन्होंने अपनी शिक्षा की भी व्यवस्था की। मास्टर होने के नाते विश्वविद्यालय की परीक्षायें प्राइवेट तौर पर दीं और वह समय भी आया कि साहित्य में एम. ए. करने के उपरान्त वे प्राध्यापक हो गये। जहाँ शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने प्रगति की, प्रेम-यात्रा में भी वे अबाध गति से प्रगति कर चुके थे। 'प्रसाद' जी की इस उक्ति से वे प्रोत्साहन प्राप्त करते रहते थे :—

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह न हो।"

प्रोफेसर भोलानाथ को जिसने अपनी कजरारी आँखों के एक इशारे पर काँटों भरे पथ हँसते-हँसते चलते रहने का अभ्यास करा दिया था, उस कुटिला का नाम सरला था। वैसे तो भोलानाथ के जीवन में कमला, विमला, तरला, सरला न जाने कौन-कौन आकर चली गईं।

ठीक एक मील के पत्थर की तरह, किन्तु सरला का स्थान प्रोफेसर की जीवन यात्रा में कुछ इस प्रकार का रहा जैसे लम्बे सफर में डाक-बंगले का। घर का सुख तो भला कहाँ मिल सकता है डाक-बंगले में ? फिर वह सुख तो प्रोफेसर स्वयं ठुकरा चुका था।

आरम्भ में सरला और भोलानाथ का सम्बन्ध गुरु-शिष्य का रहा। धीरे-धीरे इस सम्बन्ध में परिवर्तन होता गया। अब वे प्रेमी और प्रेमिका बनने के लिए प्रगति कर रहे थे। 'कामायनी' की जैसी सुन्दर व्याख्या प्रोफेसर महोदय सरला के लिए प्रस्तुत करते थे, वैसी कभी कक्षा में वे प्रस्तुत नहीं कर सके। यहाँ तक कि जब कोई पद विशेष रूप से स्पष्ट करना होता तो स्वयं मनु बनकर सरला को श्रद्धा बनाने में उन्हें देर नहीं लगती थी। सरला की माँ भी चाहती थी कि सरला तथा भोलानाथ बिल्कुल समीप आ जायें। इस विचार के मूल में तो प्रोफेसर से रुपया गांठने की भावना कार्य कर रही थी। पर वैसे सरला की माँ ने भोलानाथ को यह आश्वासन भी दे रखा था कि वह उसी से सरला का विवाह कर देगी और इसी आश्वासन के बल पर प्रोफेसर साहब ने भी बड़ी तन्मयता से अध्यापन कार्य किया, जिसके फलस्वरूप सरला एम. ए. में पास हो गई। लेकिन अफसोस परीक्षाफल के प्रकाशित होने के एक सप्ताह उपरांत, स्थानीय साप्ताहिक में सरला के विवाह का समाचार एवं चित्र देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। परीक्षाओं से एक मास पूर्व जो नए छात्र—मौजस्वरूप सरला के साथ ही प्रोफेसर साहब के घर पर पढ़ने को आने लगे थे वे सरला पर डोरे डाल रहे थे, साथ ही वे प्रोफेसर की जड़ भी हिला रहे थे और वे अपने कार्य में सफल भी हो गए। प्रोफेसर साहब फिर बेआसरे हो गये।

"उसी ने बेवफाई की जिसे हम आसरा समझे।"

अब कवि हृदय प्रोफेसर पर भावुकता मंडराने लगी। उन दिनों आँसू और गीत, यही दो मूल्यवान वस्तुएँ उनके पास थीं। साथियों से उनका दुःख न देखा गया। दौड़ धूप करके प्रोफेसर के लिए लड़की

खोज की गई। विवाह की तिथि निश्चित हो गई और विवाह के सामान की एक लम्बी सूची तैयार हो गई। जैसे-तैसे करके व्यय के लिए ऋण का भी प्रबन्ध हो गया। विवाह के शुभ दिन की प्रतीक्षा होने लगी।

उस दिन चायघर में गप्पें उड़ रहीं थीं। कोई फेल होने के गम में कैप्सटेन का धुँआ उड़ा रहा था। कुछ प्रगतिशील विद्यार्थी अन्तर्जातीय विवाह की योजना बना रहे थे। तभी भोलानाथ की शादी की चर्चा चल गई। एक कोने में बैठा मैं भी गप्पें सुन रहा था। एक विद्यार्थी जोर से कह रहा था—

"मैं तो पहले ही कहता था कि प्रोफेसर साहब की शादी जब हो जाय तभी शुक्र है। सुना तुमने उनकी पहली पत्नी लड़की वालों के यहाँ पहुँच गई। सब हाल बतलाया। लड़की वाले चौंके, क्योंकि प्रोफेसर साहब ने पहली शादी की बात प्रकट नहीं की थी।" बात चल रही थी कि बीच में दूसरा विद्यार्थी बोल उठा—"भाई, मैंने तो गुरुजी से उसी दिन कह दिया था कि वे किस चक्कर में पड़े हैं। पुराने कार्ड को क्यों Renew नहीं करा लेते।"

—: ० :—

# खेमराज गुप्त



हिमाचल प्रदेश के पूर्वी छोर जिला चम्बा—में चम्बा के स्थान पर ६ मई सन् १९३१ को श्री दौलत राम गुप्त के घर कहानीकार खेमराज गुप्त का जन्म हुआ जी हाँ, कहानीकार खेमराज गुप्त का जन्म ! कहानी सुनने का शौक तो सभी बच्चों को होता है परन्तु छोटी आयु में ही बच्चे कहानी 'कहते' कम हैं। गुप्त जी अभी ८—९ वर्ष के ही होंगे कि कहानियाँ घड़ घड़ कर घर वालों तथा सहपाठियों को सुनाते। तब इन्हें लोग 'गप्पी' कहते। आज वे लोग ही गुप्त जी को सफल कहानीकार मानकर इनकी प्रशंसा करते नहीं थकते। इसीलिये तो गुप्त जी जन्मजात कहानीकार है।

आप छोटी—बहुत ही छोटी—कहानियाँ लिखते हैं। रुला देने वाली कहानियाँ ! कहा नहीं जा सकता कि गुप्त जी ने अपने जीवन को दर्द में पाला है अथवा लोगों के दर्द ने इन्हें रुला देने वाली कहानियाँ लिखने पर बाध्य किया है।

सफल कहानीकार के अतिरिक्त आप गीतकार भी हैं। रेडियो से आप के गीत कभी-कभार सुने जा सकते हैं।

आजकल आप आकाशवाणी शिमला से सम्बन्धित हैं।

## क़ब्र की मिट्टी

"अम्माँ, छोटे भैया को क्या हो गया ? वह कहाँ गया माँ ? और बापू ने उसे गढ़े में क्यों दबा दिया ? क्या भैया वहाँ डरेगा नहीं ? उसे जब भूख लगेगी तो वह रोयेगा भी—तब—उसे दूध कौन पिलायेगा अम्माँ ?"

लगातार कितनी ही बार उसने माँ से यही प्रश्न कर डाले और अन्त में बजाये उत्तर देने के, माँ ने एक जोर का तमाचा उसके नन्हें कोमल मुँह पर लगाकर कहा था—'कलमुँहे, तूँने ही उसे मारा है—जब से तू पैदा हुआ है, एक को नहीं तीन तीन को खा डाला है, नभाग कहीं का"—और तभी एक ज़ोर का दूसरा थप्पड़ उसके नन्हें से गालों पर आ पड़ा—वह सन्न रह गया, उसे रोना सा आ रहा था किन्तु वह रो भी नहीं सका।

बाहर आकाश पर काले डरावने बादल तरह तरह की शक्लें बना बना कर बिगाड़ रहे थे—बिगाड़ बिगाड़ कर बना रहे थे—उसे लगा मानो, बादल आकाश पर नहीं उसके गाल पर रेंग रहे हों हतबुद्धि सा वह अपनी माँ का मुँह देखता ही रह गया—अभागा मुन्नू। हाँ उसे मुन्नू कहते थे सब; हालाँकि उसका नाम मनोहर था। माँ के इस व्यवहार से मुन्नू, हाँ, हाँ, नन्हें मुन्नू के दिल पर गहरी चोट लगी और वह अनमना सा होकर वहाँ से उठ गया।

आज से छः साल पहले—जब मनोहर पैदा हुआ था—तो हरि गोपाल बाबू ने मुहल्ले भर में लड्डू बँटवाए थे, दिनों तक गाना बजाना होता रहा था। मनोहर जब दो साल का हो गया तो उसे एक नन्हीं सी बहन मिली परन्तु जन्म के पन्द्रह दिनों के पश्चात् ही वह चल बसी, फिर दो भाई हुए, वह भी नहीं बचे; मनोहर अकेला का अकेला

ही रह गया।

लगातार तीन बच्चों के मरने से मनोहर की माँ बड़ी क्षुब्ध सी हो गई थी—और फिर मुहल्ले की किसी सयानी ने उसे बताया कि नन्हा मुन्नू यानी मनोहर ही इसका कारण हो सकता है अपने इस कथन की पुष्टि में सयानी ने अपनी जवानी की एक आपबीती सुना दी। सयानी ने कहा—मुन्नू की माँ ! तू क्या जाने, जब तेरी उम्र की मैं थी तो मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ था—धर्मू के पश्चात् जब मेरे भी तीन बच्चे मर गये तो मुझे भी बहुत चिन्ता रहने लगी। एक रोज़ "उन्होंने" किसी से पता लगाया कि अगर जिस दिन नया बच्चा पैदा हो तो धर्मू को उस बात का पता लगने से पहले ही जी भर कर स्वादिष्ट भोजन खिलाया जाये तो शायद बात बन सकती है। मरता क्या न करता बेटी, मैंने ऐसा किया आज ईश्वर की दया से सब चैन सुख है, सो कई बच्चे ऐसे दुष्ट होते हैं। फिर सयानी ने इधर उधर देख कर और मनोहर की माँ के ज़रा और करीब होकर कहा—"कई बच्चे जन्म के बैरी होते हैं" और भी इधर उधर की कई बातें सुनाकर सयानी चली गई।

बाहर वर्षा होने लगी थी, मुन्नू की माँ चूल्हे के और पास सरक गई—और अनजाने ही उसका ध्यान आग की लपटों में उलझ गया—उसे लगा मानों लपटों में मुन्नू का छोटा भाई बैठा उसे पुकार रहा है "अम्माँ मुझे गढ़े में डर लग रहा है—मुझे भूख लगी है अम्माँ...... अम्माँ—" फिर उसे मनोहर का ध्यान आया "हाय, मैंने मनोहर को क्यों मारा ?" उसे लगा मानों मनोहर भी उससे छिना जा रहा है एक अजीब सा भय, अजीब सी धड़कन से वह काँप उठी। वह तेज़ कदमों से बाहर गई और उन्मत्त सी इधर उधर कुछ खोजने लगी परन्तु वहाँ कहीं भी मनोहर उसे दिखाई नहीं दिया—

वह पागलों की भाँति भीतर आई परन्तु मनोहर का कुछ पता न था। बादलों के काले घेरे के नीचे दिन भी भयंकर काली रात के

समान प्रतीत हो रहा था और वर्षा थी मानों आज ही उसे बरसना हो, फिर कभी नहीं। उसने मनोहर के बापू को आवाज़ दी और पूछा "आप को पता है मनोहर कहाँ है ?"

"ना, मुझे तो मालूम नहीं, क्यों क्या बात है ?" आशंका से मनोहर के पिता का हृदय सहम उठा।

"मुझे लगता है वह कहीं चला गया है—"

"कहाँ" ?

"छोटे के पास"

"हैं"—और वह दोनों मनोहर की तलाश में बाहर निकले, सारा पड़ोस छान मारा, चलते चलते लगभग दो मील चलकर वह वहाँ पहुँचे जहाँ छोटे को दबाया गया था, तो उनकी चीख निकल गई।

नन्हें की नन्हीं सी क़ब्र पर मनोहर लेटा था, पास ही एक पत्थर भी जिस पर शायद मनोहर ने सिर रखकर छोटे को पुकारा था—

—: ० :—

# पूजा की भेंट

माँ शक्ति के मन्दिर में जब कभी भी कोई समारोह या पूजन होता तो रामी अपने दोनों बच्चों के साथ मन्दिर में जाती। प्रसाद लेती और घन्टों श्रद्धाभाव से माँ की मूर्ति को देखती रहती थी। विधवा जीवन के तीखे हलाहल को, जिसे उसे हर हालत में अपने गले के नीचे उंडेलना ही था—उस कड़वाहट को दूर करने के लिये रामी ने, माँ का सहारा लिया तो कोई बुरी बात नहीं की—उसका हृदय शुद्ध था, उसमें भक्ति-भाव था, उसमें सरलता थी, और थी माँ के प्रति अगाध भक्ति। वैसे वहाँ माँ शक्ति की आड़ लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले लोगों की कमी नहीं थी जो अपनी लोलुपता के लिये माँ को बकरे की गर्दन का भोग लगाते और चरणामृत के नाम पर शराब का प्रयोग करते—परन्तु रामी ने इस ओर न तो कभी ध्यान ही दिया और ना ही इसकी ज़रूरत ही समझी—हाँ रामी का ध्यान इस ओर भी कभी नहीं गया कि गोपाल और जगमोहन बकरे को कटते हुये बड़े अद्भुत ढंग से देखा करते थे।

जब लोग माँ शक्ति का नाम लेकर बकरे पर पानी छिड़कते और धूप सुंघाते तो काला कलूटा गोवर्धन तेज धार वाली तलवार अपने कम्बल के नीचे छुपाये रहता। ज्यों ही बकरा अपनी पीठ हिलाता त्यों ही गोवर्धन की तलवार आँख झपकते ही बकरे की गर्दन को उड़ा देती। गोपाल और जगमोहन दोनों को यह सारी बातें एक खेल जैसी ही लगती थीं।

× × ×

सर्दियों के दिन थे, रामी लोहे के बड़े से कड़ाहे में पानी गर्म कर

रही थी। शायद नन्हें को नहलाने के लिये।

बाहर चिलकती धूप में गोपाल और जगमोहन सोच रहे थे कि आज कौन सा खेल खेला जाए—तभी जगमोहन ने कहा—गोपाल, आज हम गोवर्धन की तरह बकरा काटेंगे। गोपाल—'क्या मतलब ?' जगमोहन–'तू समझा नहीं रे अभी भी ? तू बकरा बन और मैं गोवर्धन बनूँगा। तू पानी डालने पर काँपना और तब बकरा काटूँगा, समझा कि नहीं ?'

'हाँ मैं समझ गया'—गोपाल ने कहा। और दोनों तैयारियों में लग गये। गोपाल एक तेज़ धार का दरात तैयार कर लाया। जगमोहन फूल, पानी और धूप ले आया। उस समय दोनों की उम्र दस और आठ बरस की रही होगी। फिर ...... फिर गोपाल बकरा बना और जगमोहन 'गोवर्धन'। उसने गोपाल को धूप सुंघाया और पानी छिड़का। जैसे ही गोपाल काँपा, जगमोहन ने भरपूर वार गोपाल की गर्दन पर किया जो कि बकरा बना उकड बैठा था ... गर्दन दूर जा गिरी और शरीर फड़कने लगा।

× × ×

चूल्हे पर रखा पानी शायद खौलने लगा था। रामी सोच रही थी कि नन्हें को नहलाऊँ तभी जगमोहन दौड़ता आया "माँ ! माँ ! मैंने गोपाल भाई का बकरा काटा।"

"कौन सा बकरा रे; क्या कहता है तू ?"

"गोपाल भाई का बकरा माँ" और रक्त से लथपथ दरात उसने माँ को दिखाया। एक अजीब-सा धक्का रामी को लगा—अनहोनी शंका उसके दिमाग में गूँज उठी, नन्हें को वहीं फेंक कर रामी जब बाहर गई तो देखा गोपाल की लाश ठंडी हो चुकी थी।

एक भयंकर चीख मार कर रामी जगमोहन के पीछे भागी ... भय से भयभीत जगमोहन आगे-आगे और पीछे नीम-पागल-सी रामी दौड़ी चली जा रही थी। भय के मारे जगमोहन का बुरा हाल था और

माँ की डरावनी चीख ने तो मानो उसके होश ही गुम कर दिये थे। करीब ही था कि रामी जगमोहन को पकड़ लेती तभी जगमोहन ने घाटी के नीचे बिना देखे ही छलांग लगा दी। क्षण भर के बाद ही एक चीख सुनाई दी और बस..................

× × ×

जब अभागी रामी पागलों की तरह घर पहुँची, तो उसकी एक और दर्दनाक चीख निकल गई। जल्दी में नन्हें को शायद वह उबलते पानी के कड़ाहे में ही फेंक गई थी।

---

# वंशीधर पाठक 'जिज्ञासु'



●

'जिज्ञासु' जी का जन्म २१ फरवरी सन् १६३४ में ग्राम नहरा जिला अलमोड़ा में हुआ।

आप के पिता श्री पुरुषोत्तम पाठक हिन्दी और संस्कृत के विद्वान है अतः उन्ही से 'जिज्ञासु' जी को बचपन में ही हिन्दी और संस्कृत का समुचित परिचय प्राप्त हो गया था। पिता 'जिज्ञासु' जी को लॉ-ग्रेजुएट बनाना चाहते थे परन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण जिज्ञासु जी एफ. ए. के पश्चात् अपनी शिक्षा चालू न रख सके और आपने अध्यापन कार्य आरम्भ किया।

१,६५० से लेकर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कवितायें, कहानियाँ प्रकाशित होती रही हैं। आप ने कुछ सफल रेडियो नाटक भी लिखे हैं। कुछ समय तक आप आकाशवाणी शिमला में भी रह चुके हैं। तब से आप की रुचि नाटक लिखने की ओर अधिक बढ़ गई। इधर आप कहानियाँ कम लिखने लगे हैं। परन्तु जो तीसरे, चौथे मास भी कहानी आपकी लेखनी से निकलती है वह पाठकों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। आप लघुतर कहानियाँ ही अधिक लिखते हैं।

# अन्तर्द्वन्द्व

"समस्याओं तथा संघर्षों से मानव हृदय में जो असह्य स्थिर रोग उत्पन्न होता है उसे मैं अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दूँगा। औरों के विषय में मैं कुछ नहीं जान सका हूँ। हाँ, जानने की इच्छा अवश्य करता हूँ। इस लिए दूसरों के विषय में मैं क्या कह सकता हूँ? मैं तो अपने ही विषय में कहूँगा।

अपने हृदय में उद्भूत अन्तर्द्वन्द्व पर विचार करके देखता हूँ तो मेरे लिए तो वह एक अमूल्य वस्तु हो गई है। मेरे हृदय का वह अन्तर्द्वन्द्व उस यथार्थ की आराधना करता है जो कि मेरी व्यथाओं, उलझनों और घुटनों का पोषक है। यही कारण है कि अन्तर्द्वन्द्व का मूल्य मेरे लिये अधिकाधिक है।

मेरे जीवन का, तथा मेरे जीवन में होने वाले सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति, गुण-दोष······का पालनहार, वही अन्तर्द्वन्द्व है। वह मेरे सु-कु-विचारों का साक्षी है, सुख-दुःख में मुझे एक अलौकिक आनन्द प्रदान करता है।

मैं आज जो इतनी सुधरी हुई अवस्था में हूँ इसका क्रान्तिकारी सुधारक भी वही अन्तर्द्वन्द्व है। मेरे विचार आज परिपक्व हो चुके हैं; यह भी उसी एक अन्तर्द्वन्द्व का सफल प्रयास है। ये विचार, कि:—

'विषमता, अस्पृश्यता और अमानवता की प्रवृत्ति को त्याग दो; भूत और भविष्य पर विचार मत करो; मानव बनो अति-मानव नहीं; अति कल्पना अवांछनीय है'—मेरे अन्तर्द्वन्द्व ने मुझे उपहार रूप में दिए हैं।

सबसे बड़ी और सबसे सुन्दर बात जो कि सबके जानने योग्य है

यह है कि मेरा वह अन्तर्द्वन्द्व सदैव मेरी आत्म-शुद्धि में सहायक रहा है, सेवा-मोह ही मेरे अन्तर्द्वन्द्व की चरम सीमा रही है।

अपने अन्तर्द्वन्द्व के विषय में इतना कुछ कह देना ही मेरे लिये पर्याप्त है।"

उपरोक्त शब्द मेरे अपने नहीं। मैं इतनी बुद्धिमान नहीं हूँ। ये तो मुझे एक सन्यासी ने उस समय कहे थे जबकि मैं अपने जीवन से ऊब गई थी। और उस जीवन से, जो कि दुःखमय और अशान्तिपूर्ण हो चुका था, पीछा छुड़ाना चाहती थी। इसका एक ही उपाय मुझे सूझा था और वह था सरिता के प्रबल प्रवाह में अपने को अर्पित करना जिसे कि लोग आत्म-हत्या कहते हैं।

हाँ, तो मैं सरिता के प्रबल प्रवाह में कूद पड़ी थी किन्तु मेरा समय अभी पूरा नहीं हुआ था। अतः उन सन्यासी जी ने मुझे नदी के प्रवाह से निकाल लिया। और मुझे उपरोक्त शब्द कह कर जीवित रहने और संघर्षमय जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया।

इस घटना को प्रायः ४० वर्ष हो चुके हैं किन्तु मेरे लिए यह अब भी चिर-नूतन है।

अब मैं जीवित रहूँगी। संघर्ष करूँगी और संसार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अपने प्रियतम के घर जाकर उन्हें सुनाऊँगी। मैं अधिक काल तक जीवित रह सकूँ तथा संसार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकूँ, यही मेरी अभिलाषा है।

---

## "अशान्त"

एक दिन सायंकाल के समय मानव उद्विग्न-सा सुदूर सागर के तट पर भ्रमण कर रहा था। वह अपने को उस निर्जन स्थान पर एकाकी ही समझ रहा था, लेकिन वह एकाकी था नहीं; उस के साथ उसकी चिरसंगिनी श्यामवर्णा छाया भी थी, जो मौन धारण किए अपने प्रियतम के पदचिह्नों पर पद धरती हुई उसका अनुकरण कर रही थी। मानव की वाणी मूक थी लेकिन उसके अन्तस में हलचल मची हुई थी, अशान्ति का सागर उमड़ रहा था, वह पागलों की भाँति अपनी प्रेयसी शान्ति की खोज में था, जिसे वह सांसारिक संघर्षों में खो बैठा था। वह शांति भी मानव से रूठकर न जाने किस अज्ञात देश में चली गई।

मानव असफल अन्वेषण से परिश्रान्त हो सागर के तट पर स्थित एक बड़ी सी शिला पर जा बैठा। उसका मन उदास था। मानव को उदास देख, छाया ने उससे मौन में पूछा—'हे प्रिय ! तुम किस कारण इतने उद्विग्न हो ? यहाँ किसे खोज रहे हो ?'

प्रश्न सुनकर मानव ने अपना मुँह सागर की ओर फेर लिया और उस असीम सागर की गोद में लहराती हुई तरल तरंगों को देखता रहा। छाया भी चुपचाप वहीं बैठी रही और चंचल लहरों को देखती रही। उसने देखा कि सागर की लोल लहरें सागर के तट पर प्रहार कर रही हैं। संभवतः यह तट इनका मार्ग रोके हुए बैठा है।

चिरकाल की मौन साधना के पश्चात् मानव ने छाया से पूछा—"हे श्यामवर्णे ! मैं जिस वस्तु की कामना करता हूँ वह मुझ से दूर होती जाती है और जिसकी मुझे चाह नहीं वह सदैव मेरे पीछे-पीछे फिरती रहती है। ऐसा क्यों होता है ?"

लेकिन छाया कुछ भी न बोली, इस पर मानव समझ गया कि वह पहले अपने प्रश्न का उत्तर चाहती है। मानव ने छाया को सम्बोधित करते हुए कहा—"प्रिये ! तुम यही पूछना चाहती हो कि मैं किसका अन्वेषक हूँ ? सुनो, वह निराकार है, उसका कोई रूप-रंग नहीं। परन्तु जब वह मेरे निकट होती है तो मुझे बहुत प्रसन्नता होती है।"

मानव छाया को अपनी शान्ति का परिचय दे ही रहा था कि सूर्यास्त हो गया। छाया तम में ही विलीन हो गयी। मानव अब एकाकीपन से तथा तम के आगमन से भयभीत हो अपने घर की ओर अशान्त का अशान्त ही लौट चला।

---

## डॉ. राज 'कँवल'



आपका पूरा नाम देसराज है और 'कँवल' उप नाम। आपका जन्म ५ मार्च सन् १९२३ को रियासत कपूरथला के प्रसिद्ध नगर सुल्तानपुर लोधी में हुआ। कविता का शौक बचपन से ही रहा है परन्तु ठीक रूप से आप की कविता १९४२ से ही प्रकाशित होने लगी। 'कंवल' जी ने अंग्रेजी में एम. ए. किया है परन्तु आपको उर्दू, हिन्दी, पंजाबी पर भी पूर्ण अधिकार है और तीनों भाषाओं में आप की कविता समान सरस होती है। यही बात कहानियों तथा अफसानों की है। यद्यपि आप एक साथ कवि तथा कहानीकार है परन्तु रूचि कविता की ओर अधिक है और कहानियाँ कुछ कम लिखते है परन्तु जब भी कहानी लिखने कलम उठाई, जीवन उभर आया, मोती बिखर गए।

# लहरों की आग़ोश में

रूप और प्यार···यह दोनों छोटे छोटे शब्द न जाने कितनी दास्तानें अपने हृदय में छुपाए हुए हैं···दास्तानें···भिन्न भिन्न प्रकार की दास्तानें···मीठी मीठी किसी युवती के प्रथम प्यार की भाँति···प्यारी प्यारी···शिशु के अधरों पर नृत्य करती हुई मुस्कान की भाँति···गङ्गा-जल की भाँति पवित्र···मशीनों में पिसते हुए मजदूरों की भाँति हृदय विदारक···देश की सीमा पर दम तोड़ते हुए देश-भक्त सैनिक की भाँति दर्दीली···नैपोलियन के आगमन पर जलते हुए "मास्को" की भाँति भयानक···रूप और प्यार के माया-जाल में उलझ कर हर इन्सान मार्ग से भटक जाता है और यदि कोई इन टेढ़ी राहों पर से सुरक्षित गुजर जाता है वह इन्सान से देवता बन जाता है···संसार उसे पूजने लगता है और उसके प्रेम-गीत अमर हो जाते हैं।

जहाँ रूप अपने "अभिमान" और "अल्हड़पन" के लिए बदनाम है वहाँ प्रेम अपने स्वाभिमान और हठ के लिए विख्यात है···परन्तु ऐसा होते हुए भी रूप के दर्पण में प्रेम और प्रेम के दर्पण में रूप कितने रंगीन···कितने मनमोहक और कितने सुन्दर दिखाई देते हैं···दोनों में चोली दामन का साथ है···रूप के बिना प्रेम जैसे बे रस गीत और प्रेम के बिना रूप···जैसे बिना रङ्गों की तस्वीर···

शायद इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए 'सुधीर' ने अपनी प्रतिज्ञा—प्रेम न करने की प्रतिज्ञा को—ताक पर रख दिया था। सम्भव है वह ऐसा न भी करता यदि उसके सन्मुख उसकी सहपाठिका 'नीरा' उसके मित्रों का अपमान न करती। नीरा रूप की रानी थी—नील गगन पर जगमगाते हुए चौदहवीं के चाँद से अधिक सुन्दर।

किसी सर्वोत्तम कलाकार की महान कृति। साँवला रङ्ग, गोल गोल मुखड़ा, बड़ी बड़ी चमकती हुई बिलौरी आँखें जैसे रात्रि के अन्धकार में सागर के वक्षःस्थल पर ज्योति स्तम्भ, क्लोपैट्रा की नाक को शर्मा देने वाली तीखी नाक, सावन की घटाओं के समान बल खाती हुई अलकें, पतले पतले गुलाबी होठ जैसे दो पिघले हुए "याकूत", सीने पर चंचल दुपट्टा और उसके नीचे दो साँस लेते हुए कँवल, वो सचमुच आकाश से धरती पर आई हुई अप्सरा दिखाई पड़ती थी। सुधीर को छोड़कर कॉलिज के और सभी दिल फैंक युवक नीरा के हाथों अपमानित हो चुके थे और अब वह हर रोज़ एक विजेता की भाँति कालिज में प्रवेश करती। उसकी सुराहीदार गर्दन में विजेता सिकन्दर की सी अकड़ थी, उसकी भाव-भंगिमा को ध्यान में रखते हुए प्रायः छात्र उसे "नैपोलियन" के नाम से पुकारते थे। उसके दहकते हुए रूप के सामने हर युवक ऐसे पिघल जाता जैसे गर्म छुरी के सामने मक्खन की टिकिया।

नीरा बेहद मग़रूर हो चुकी थी और उसके इसी ग़रूर को चकनाचूर करने के लिए सुधीर ने अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया था। वह हर कीमत पर नीरा को झुकाना चाहता था। वह इस सिद्धांत का अनुयायी था कि औरत चापलूसी करने से दूर भागती है परन्तु ठुकराने से समीप आती है। वह हमेशा यही कहा करता कि यदि तुम किसी औरत का दिल जीतना चाहते हो तो उसके साथ इस ढंग से बर्ताव करो जैसे कि तुम्हें उससे कोई लगाव नहीं। उसके सामने दूसरी लड़कियों की जिन्हें वह जानती हो खूब प्रशंसा करो, विवाह के शब्द पर घृणा प्रकट करते रहो और बस'''फिर वह लड़की तुम्हारी और केवल तुम्हारी होकर रह जायेगी।

सुधीर और नीरा की टक्कर अब रूप और प्यार की टक्कर बन कर रह गई थी। अङ्गार से अङ्गार टकरा रहा था। छोटी छोटी झड़पें चिंगारियों के रूप में प्रकट होने लगीं। परन्तु अभी तक वह

चिंगारियां भड़क कर ज्वालामुखी नहीं बनी थीं। परन्तु ऐसी दशा देर तक न रह सकी और आखिरकार एक दिन भिन्न भिन्न दिशाओं से आती हुई दो विशाल लहरें आपस में टकराई और ऐसी टकराई कि हमेशा के लिए आपस में घुल मिल गईं···।

बात साधारण सी थी। "क्लास रूम" में एक ही समय प्रवेश करते हुए सुधीर और नीरा एक दूसरे से टकरा गए। दोनों ने एक दूसरे की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखा। नीरा का घमण्डी हाथ हवा में लहराया परन्तु सुधीर के मजबूत हाथ ने सहसा झटक कर उसे नीचे फैंक दिया। और यूँ प्रेम ने रूप पर अपनी अमिट छाप लगा दी। अपनी पराजय का अनुभव करते हुए कोमलाङ्गी नीरा ने अपना निचला होंट काटना आरम्भ कर दिया परन्तु तब तक सुधीर जा चुका था···।

उस रात घर जाकर नीरा को नींद नहीं आई। सुधीर की वीरता से टकराकर उसका घमण्ड काँच के बर्तन की भाँति टुकड़े टुकड़े हो चुका था। बिस्तर पर करवट बदलते ही सुधीर का सुन्दर एवं सुडौल शरीर उसके सन्मुख आ खड़ा होता। और उसे ऐसा अनुभव होता जैसे वह सामने खड़ा हुआ एक विजेता जनरल की भाँति उससे बिना किसी शर्त के हथियार डालने का आग्रह कर रहा हो। वो उठ कर बैठ गई और कमरे में रोशनी करने के पश्चात एक विशाल दर्पण के सामने जा खड़ी हुई। उसने अपने सुलगते हुए बाजुओं को किसी तीर-अन्दाज के हाथों में खिंचे हुए कमान की भाँति फैला दिया। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे उसका उठा हुआ हाथ किसी और बलिष्ठ हाथ में अटक कर रह गया हो। काश! सुधीर के हाथ उसके हाथ को हमेशा के लिए थाम लें! वह धीरे से बड़बड़ाई और फिर सपनों की दुनिया में खो गई···

दिन प्रति दिन नीरा के मिजाज में परिवर्तन होता चला गया शायद प्रेम ने उसके सुलगते हुए घावों पर मरहम रख दी थी। अब

नीरा पहली सी नीरा नहीं थी। उसे देखकर कॉलिज के छात्रों को अब भय नहीं लगता था। अब उन्होंने "नैपोलियन" की उपाधि छीन कर उसे "शकुन्तला" के नाम से पुकारना आरम्भ कर दिया था। परन्तु सुधीर अब भी वही सुधीर था। उसे नीरा से घृणा थी—एक दम घृणा। वह अपने मित्रों के अपमान का बदला लेना चाहता था, नीरा के रूप का सिर झुकाना चाहता था। नीरा जितना उसके समीप होने की चेष्टा करती वह उतना ही उसे ठुकराता जाता। परन्तु नीरा की वफा के कदम नहीं डगमगाए। वह लगातार उसके समीप होती चली गई। आखिर पेड़ कितना ही मजबूत क्यों न हो, आँधी और तूफान के थपेड़े उसमें थोड़ी बहुत लचक पैदा किए बिना नहीं रहते। नीरा की अथाह मुहब्बत ने सुधीर के पाषाण हृदय में प्रेम की चिंगारी भर ही दी। 'हैलो···नमस्ते···आप···हम···दोनों···तुम··· मैं···" और इसी तरह वह प्रेम की सीढ़ी पर चढ़ने लगे—और एक दिन सुहानी संध्या को—शहर से दूर—मचलती हुई नदी के किनारे एक पेड़ की डाल पर दोनों प्रेमियों ने प्रथम बार अपनी अपनी प्रीत के अधरों पर पड़े हुये तालों को आजाद कर दिया···अब वे हर रोज़ वहीं मिलते और नदी के पानी में उठती हुई लहरों की शपथ उठा कर ज़िन्दगी भर एक दूसरे का हो कर रहने की प्रतिज्ञा करते···

"लहरों का क्या भरोसा सुधीर···पल में उठती हैं और पल में मिट जाती हैं", वो किनारे पर पड़ी हुई रेत के घरौन्दे बना बना कर उन्हें तोड़ते हुये कहती जैसे ये रेत के घरौन्दे वैसे ही लहरों के आँख झपकते ही खतम हो जाते हैं।

"तो आओ, फिर उस चमकते हुये चाँद को अपनी मुहब्बत का साक्षी बनायें", वो उसके गालों पर लटकती हुई अलकों को अपनी लम्बी लम्बी उङ्गलियों से हटाते हुये कहता।

"चाँद भी तो घटता बढ़ता है सुधीर !", नीरा झट से नदी के निर्मल जल में अपने गोरे गोरे पाँव को लटकाते हुये कहती और फिर अति-

दिन इसी भाँति भिन्न भिन्न देवी देवताओं को साक्षी मान कर कसमें खाई जातीं हर। रोज़ ढलते हुए सूर्य की लाली नीरा के गालों की लालिमा में विलीन होकर उसे और भी सुन्दर बना देती। सुधीर अधीर होकर उसे अपनी मज़बूत बाँहों में भींच लेता और अपने तपते हुए होंठ नीरा के सुलगते हुए होठों पर रख देता। नीरा और सुधीर अर्थात् रूप और प्रेम आपस में इतना घुल मिल गये थे कि दोनों में अन्तर करना कठिन होता जा रहा था। अब कॉलिज में दोनों की प्रीत का चर्चा आम था। सुधीर के जिगरी दोस्त जिनके लिए उसने अपना सभी कुछ दाव पर लगा दिया था। उसकी मुहब्बत पर उङ्गलियाँ उठाने में सबसे आगे थे। परन्तु सुधीर और नीरा प्रेम की ऐसी मंजिल पर पहुँच चुके थे जहाँ से लौट आना असम्भव है।

एक चाँदनी रात थी। चाँद की कोमल किरणें नदी के पानी में जलतरङ्ग बजा रही थीं। नीरा का दहकता हुआ शरीर सुधीर की बाहों में था। नीरा भाग जाना चाहती थी। आज न जाने क्यों उसे सुधीर से भय लगने लगा था। "नीरा···जानती हो एक बच्चा अपना मन-पसन्द खिलौना किसी और के हाथों में देने की अपेक्षा धरती पर पटक देता है, टुकड़े टुकड़े कर डालता है। तुम मेरी नहीं हो सकतीं। इसलिये मैं तुम्हें किसी और के हाथों में पड़ने की अपेक्षा उस बच्चे के खिलौने की भाँति तोड़ देना चाहता हूँ हमेशा २ के लिए।" फिर एक चीख और ठहाका। एक साथ वायुमण्डल में गूंज उठे, एक भयानक चीत्कार पानी में गुम हो कर खामोश हो गया। नीरा नदी की तूफानी लहरों में समा चुकी थी··········"नीरा" एक कम्पित ध्वनि फिर पवन के सीने में भाले की भाँति चुभ गई···पागल सुधीर अपनी नीरा को ढूंढने के लिए खूनी लहरों में उतर गया। थोड़ी देर पश्चात् पानी के वक्षःस्थल पर दो लाशें तैर रही थीं—रूप और प्रेम की लाशें।

······नदी अब भी उसी गति से बहती है, उसके किनारे किसी

पेड़ की डाली अब भी प्रेमियों की प्रतीक्षा करती है, किनारे की रेत अभी तक रूप और प्रेम के पदचिन्हों को अपने सीने से लगाए हुए है परन्तु नीरा और सुधीर ! वो रूप और प्रेम की ज़िन्दा तस्वीरें हमेशा हमेशा के लिए लहरों की आग़ोश में विलीन हो चुकी हैं··· ।



# सिद्ध मकरध्वज

आप कोई भी मासिक पत्र उठा कर देख लीजिए उसमें आपको सिद्ध मकरध्वज का विज्ञापन अवश्य मिलेगा। "नया खून, नई ताक़त, नई जवानी ! एक ही खुराक के सेवन से बूढ़ी हड्डियों में ताकत लौट आती है ! वजन और खून कई पाउंड बढ़ जाता है ! गर्मी और सर्दी में एक समान ही लाभदायक है ! लाखों इन्सान नित्य प्रति प्रयोग में लाते हैं !! मूल्य एक शीशी (पूरा कोर्स) छः रुपये"··· परन्तु साहिब। महाशय मुनीलाल और सिद्ध मकरध्वज में क्या अन्तर है ? जो लाभ एक में है वही दूसरे में ठीक उतनी ही मात्रा में मौजूद है। और हाँ दवाई फिर दवाई है, लाभ करे या न करे, ठीक बैठे या न बैठे, परन्तु क्या मजाल कि महाशय मुनीलाल का वार खाली चला जाये। गोली भीतर दम बाहिर ! हाथ कंगन को आरसी क्या और पढ़े लिखे को फारसी क्या ? यदि आपको हमारी बातों पर विश्वास न हो तो स्वयं आजमा देखिए। भगवान की क़सम यदि पहली ही भेंट में आपको अधमूआ न कर दें तो दाम वापिस।

जब किसी से प्रथम बार भेंट होती है तो झट से कह उठते हैं कि ...जी आप से मिल कर चित्त बहुत अप्रसन्न हुआ। वास्तव में ...प्रसन्न ही चाहते हैं किन्तु ज़बान ठीक समय पर झटका ...आप विश्वास नहीं करेंगे जब पहली बार उनसे मेरी ...हैं कुछ और ही समझ बैठा। आखिर इन्सान ही ठहरा ... गलतियों का पुतला ! मैंने उन्हें गोशाला का ... समझ लिया। परन्तु वह तो खैर समझिये कि ... में कुछ पूछताछ नहीं की वरना भगवान जाने ...हो जाती।

एक दो मुलाकातों में वह ऐसे घुल मिल जाते हैं जैसे आपसे बरसों पुरानी मित्रता हो। खैर कुछ भी कहिये महाशय जी हैं दुबले आदमी··· लासानी, लाफानी, इंगलिस्तानी, ईरानी या जापानी आपके जी में जो आये कह लीजिए, सब सच है। खाते अधिक हैं पानी का प्रयोग कम करते हैं। बोलते कम हैं "बोर" अधिक करते हैं, सिर दर्द के लिए अक्सीर हैं। पाँच मिनट की "इण्टर-व्यू" में अच्छे भले इन्सान को बीमार कर देने का दावा रखते हैं।

भोजन आदि के विषय में बड़ी समझ बूझ से काम लेते हैं। फलों में अधिकतर उनकी रुचि करेले, भिन्डी और गाजर में है। सब्जियों में तरबूज, गंडेरियाँ, आम और भुनी हुई खस्ता मूँगफली उन्हें बहुत प्रिय हैं। दुनिया माने या न माने एक बार मित्रों के साथ होटल में खाना खाने का अवसर मिला। खाने के पश्चात् "फ्रूटक्रीम" लाई गई तो फरमाने लगे······और तो सब ठीक है सुसरे इसमें आलू डालना भूल गए। वह तो भाग्य की बात कहिए कि बेयरर दूर था वरना यार लोगों का खाना अधूरा रह जाता। हाँ, एक बात और! लोग तो खा पीकर विश्राम करने के लिए थोड़ी देर सो लेते हैं परन्तु साहिब, अपने महाशय मुनीलाल जी अछूतेपन में विश्वास रखते हैं। इसलिए खाने से पहले सो लेते हैं और फिर सोने वालों का नाक में दम कर देते हैं।

जहाँ तक दिमाग का सम्बन्ध है अवश्य उनमें किसी महान पुरुष का वरदान काम कर रहा है। राजनीति से लेकर फिल्मों तक आप ज़रा कोई विषय छेड़िये तो सही फिर अगर आपको अपनी रक्षा के लिए "मिलिटरी पुलिस" न बुलवानी पड़ जाए तो धिक्कार है उन पर। यार लोग सिनेमा की बात छेड़ दें तो फिर अपने महाशय मुनीलाल जी नहीं रुकते। बहुत दूर की कौड़ी लाते हैं और वह वह नुक्ते निकालते हैं कि आपका स्वयं उनके कमरे से निकल जाने को जी करता है। एक झलक, देखिये कहने लगते हैं······फिल्म "तीन आँखें चौदह हाथ" में यदि "सौहराब मोदी" की जगह "शान्ताराम" और "मीनाकुमारी"

की बजाय "संध्या" होती तो फिल्म के वारे न्यारे हो जाते। "दलीपकुमार" ने फिल्म "जन्म जन्म के फेरे" में खूब अभिनय किया है ! सुना है "राजकपूर" फिल्म "जिम्बो" में आ रहा है। जब बात फिल्मी संगीत पर आती है तो कहते हैं—भई, "एस० डी० बर्मन" ने "बैजू बावरा" में कमाल कर दिया है। "मुकेश" ने "तू गंगा की मौज" वाला गाना खब जम कर गाया है, "लता" ने "सुनो सुनो ऐ दुनिया वालो बापू की यह अमर कहानी" गा कर रंग बाँध दिया है। "रफी" ने कितने ओज से वह गाया है गीत "पंछी बनूँ, उड़ती फिरूँ नील गगन में" ? "तलत" की क्या बात है आपने सुना होगा उसका गीत "मन तड़फत हरिदर्शन को आज" ! अब आप ही कहिये कि यदि कोई इतना कुछ सुन कर भी एक कप चाय और छः गोली ऐनासीन न मांगें तो दोष किसका है ?

राजनीति तो उनके घर की दासी ठहरी। "राजा जी" से लेकर "कैरों" तक को जानते ही नहीं बल्कि पहचानते भी है। दुर्भाग्य से पंजाब की राजनीति का जिकर छिड़ गया। अपने मुनीलाल जी बोल उठे—अब तो "ज्ञानी प्रतापसिंह भार्गव" पंजाब का मुख्य मंत्री नहीं रह सकता। अब तो पंजाबियों के लिए एक ही मार्ग है कि या तो "बलदेवसिंह राड़े वाला" को प्रधान मन्त्री बनायें या "स्वर्णसिंह बाजवा", को। अब आप ही फैसला कीजिये कि उनको क्या सजा दी जाये ? उनकी रुचि पंजाब तक ही सीमित नहीं। भारतवर्ष की राजनीति का जिकर करते हुए कहते चले जाते हैं—जब से "मोरारजी देसाई" रक्षा-मन्त्री बने हैं हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा सुधर गई है। ...... "जगजीवनराम" को शिक्षामन्त्री बनाकर "पं० जवाहरलाल पंत" ने अच्छा नहीं किया......राम झूट न बुलवाये दुनिया की राजनीति में तो वह नम्बर एक कोरे हैं। पिछले दिनों की बात है कि मिस्र की बात चल रही थी कहने लगे—"कर्नल नसीर" भी गजब का आदमी है। जब वह "क्रुसचाव" के बुलावे पर "फ्रांस" गया तो वहां पर "आईजन

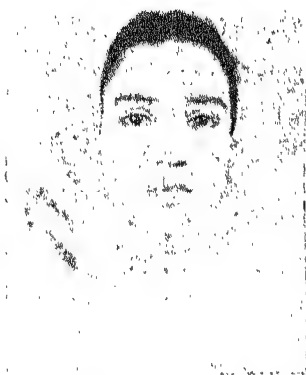
ह्रावर" ने उसका वह स्वागत किया कि "मार्शल टीटो" भी चकित रह गया। आप विश्वास नहीं करेंगे जिस भी महफिल में वह राजनीति पर भाषण देने लगते हैं लोग वहाँ से यूँ खिसकने लगते हैं जैसे "फ्लिट" के सामने जीव-जन्तु। हँसने पर उन्हें गुस्सा आ जाता है और गुस्से में वह कितने सुन्दर दिखाई देने लगते हैं इसका जवाब तो वही लोग दे सकते हैं जिन्होंने "ओमप्रकाश" को फिल्म "गेटवे आफ इन्डिया" में फुटपाथ पर छुरा-नृत्य करते देखा है।

खैर साहिब, फैसला आप पर ही है कि आपको "सिद्ध मकरध्वज" चाहिये या "मुनीलाल जी"। सिद्ध मकरध्वज की कीमत है एक शीशी पूरा कोर्स छः रुपये मगर इनकी कीमत कोई नहीं केवल कोर्स ही कोर्स है।

---

# कलावती ठाकुर

●



कहानी जगत में हिमाचल प्रदेश की महिला कहानी लेखिकाओं में आपका उच्च स्थान है।

१२ दिसम्बर १९३२ को आपका जन्म एक सम्पन्न ठाकुर परिवार में हुआ। माता जी इनको बहुत छोटी आयु में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गईं। माँ की जुदाई का नन्ही कला पर गहरा प्रभाव पड़ा। दादा की क्रान्तिकारिता, पिता के गाम्भीर्य, दादी माँ की तीक्ष्ण सूझबूझ तथा माँ की जुदाई ने कला जी को अबला से सबला बना दिया है। आप उच्च शिक्षिता हैं।

साहित्य से रुचि वैसे तो बचपन से ही थी परन्तु सन् ५५ से, जब से आप आकाशवाणी शिमला में स्थायीरूप से आईं, यह रुचि परिपक्व हो गई।

आपकी कहानियों में कर्तव्य का सन्देश होता है।

# जीत

रूपा की माँ जब उसे छोड़ कर चल बसी तो उस समय रूपा पाँच वर्ष की थी। एक हल्की सी याद रूपा के मन में आज भी बाक़ी है। जब लोग माँ को श्मशान ले जाने लगे थे तो उसने अपने पिता से पूछा था, "बापू, माँ को यह क्या हो गया है? लोग माँ को कहाँ ले जा रहे हैं?" तब पिता ने कहा था, "तेरी माँ भगवान के पास चली गई है रूपा बेटे, अब वह कभी भी नहीं लौटेगी। वहाँ से कोई भी नहीं लौटता बेटा!" तब शायद रूपा उन बातों को नहीं समझ पाई थी जितना आज समझती है। पिता ने उसे बड़े लाड़-प्यार से पाला, माँ की कमी उसे कभी महसूस नहीं हुई।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा और बीतता चला गया। रूपा एक बच्ची से बढ़ कर एक लड़की हो गई थी। चार महीने हुए उसके पिता भी उसके सामने-सामने भगवान के पास चले गए थे वहाँ जहाँ से कोई भी लौट कर नहीं आता, जहाँ से उसकी माँ भी लौट कर नहीं आयी थी। आज रूपा अकेली रह गई थी। वह जीवन कैसे बितायेगी? पहाड़ सा लम्बा जीवन बापू के बिना कैसे बीतेगा? यही विचार रह-रह कर उसके मन को हिला रहा था। आशाओं, निराशाओं से कितने ही ताने बाने रूपा रोज़ बनाने लगी। उसकी सहेलियाँ रोज़ पनघट पर पानी लेने जाती थीं। रूपा को उनके साथ जाना भी अच्छा नहीं लगता था। वे हँसतीं, गीत गातीं तो रूपा को लगता मानो वह उसी का मज़ाक उड़ा रही हों, उसका अपमान कर रही हों। एक अद्भुत सी दशा उसकी हो रही थी परन्तु फिर भी रूपा जीवन बिता ही रही थी। उसे कुछ भी पता नहीं था, हाँ, केवल दिनों पर दिन बीतते चले जा रहे थे। क्षण-क्षण करके पूरे दो वर्ष व्यतीत हो गए।

गाँव में इन दिनों कल्याण केन्द्र खुल रहे थे। रूपा भी ग्राम-सेविका बन गई। कुछ दिनों से जीवन का एक नया प्रवाह रूपा के सामने था। मानव-जीवन भी कितना विचित्र है! कितना आघात कितनी चोटें हमारे मन को लगती हैं परन्तु हम उन्हें भूल जाते हैं! अगर वे चोटें हमें याद रहें तो हम कभी भी अपने मार्ग से भटक नहीं सकते, भूल नहीं सकते। परन्तु हम ऐसा नहीं करते, हम स्वयं उन्हें भूल जाते हैं और दोष ईश्वर को देते हैं।

ग्राम सेविका बन रूपा के मन को एक सन्तोष सा मिला, मिलता भी क्यों न? सेवा में ही तो सन्तोष छुपा है और सन्तोष में निहित है सुख। अशान्त हृदय केवल शान्ति चाहता है लेकिन सुखी हृदय भटकने लग जाता है, कैसी है प्रभु की विडम्बना? भाँति २ की विचित्र कल्पनाएँ सुखी मन को सूझती हैं। उसकी दशा दूध के उस पात्र के समान हो जाती है जो पूरा भरा हुआ होता है परन्तु ज़रा भी आँच लगने पर वह बाहर निकलने लगता है। अपना भी नाश करता है और पात्र को भी मैला करता है, उसी पात्र को जिसका उसने आधार लिया था।

हरिमोहन भी उसी केन्द्र में ग्राम सेवक थे जिसमें रूपा थी। न जाने क्यों रूपा का मन एकान्त में हरिमोहन के बारे में कुछ सोचा करता था। कई बार रूपा की अन्तरात्मा उसे सत्य का ज्ञान करवाती—"पगली, इसी बल पर तू सेवा करने चली थी दीन दुखियों की, अशिक्षितों की? जब तू स्वयं दुखी थी तो तुझे सेवा का विचार आया, आज तू जरा सुखी हो गई तो कहाँ गया तेरा सेवा भाव, क्या तू इतनी गिर गई है रूपा?" परन्तु दूसरे ही क्षण झूठी दुर्बलता उभर आती और तब रूपा सोचती, "मैं कोई पाप थोड़े ही कर रही हूँ, विचार ही तो हैं अपने आप ही तो आ जाते हैं, कोई मैं थोड़े ही इन्हें लाती हूँ" और फिर रूपा सोचती मैं कोई अपने पथ से डिग तो नहीं गई हूँ।

कितने ही दिनों तक रूपा के मन में यह द्वन्द्व चलता रहा। एक

रोज़ एक अतिथि केन्द्र देखने आया। उनकी शक्ल रूपा के पिता जी से मिलती जुलती थी। दैवयोग से वे अतिथि रूपा के ही पास आकर खड़े हुए और अनायास ही रूपा के सिर पर हाथ फेर कर बोले, "रूपा बेटी, धन्य है भारतभूमि जहाँ तुम जैसी कर्मशील बालायें हैं, होंगी भी और होती भी रही हैं। भावना से कर्तव्य ऊँचा है बेटी, इसे सदा ध्यान में रखना, ईश्वर तेरा कल्याण करेंगे।" न जाने क्यों रूपा की अन्तरात्मा पूरे वेग से जाग उठी। दो मोटे-मोटे आँसू रूपा की आँखों से लुढ़क कर खद्दर के मोटे दुपट्टे में जज़्ब हो कर रह गये। निर्मल मन की आवाज़ आयी, हरिमोहन अगर मुझ जैसे होते तो उन्हें भी यही आशीर्वाद मिलता। यही दिव्य सुख उन्हें भी प्राप्त होता। छिः मैं कितनी नीच थी और फिर मन से एक सच्ची आवाज आयी, मैंने भूल की, आगे से कभी नहीं भूलूँगी—क्योंकि मेरा मार्ग सेवा मार्ग है, दुखियों को उठाने का मार्ग है, तू जीत गई है रूपा तू जीत गई है ! मन को पक्का कर तेरी सदा जीत होगी—सच्चाई कभी नहीं हारती उसे बुराई से दूर रखो। सच्चे मार्ग पर चलो। काँटे तो अवश्य लगेंगे परन्तु सच्चे राही उनको निकाल कर आगे बढ़ जाते हैं—उसकी पीड़ा से रोते नहीं।

---

# पगडण्डी

अनुराधा की नजरें पगडण्डी पर गड़ी थीं। टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी अभागे के भाग्य के समान उलझी हुई कितनी विचित्र लग रही थी— अनुराधा को ऐसा लगा मानो टेढ़ी-तिरछी पगडण्डी अपनी मूक भाषा में उसे सांत्वना दे रही हो। उसे शब्द नहीं सुनाई दे रहे थे परन्तु भाषा वो समझ रही थी। कोई खामोश आवाज कह रही थी— "अनुराधा, क्या इतने में ही घबरा गई हो? पगली मुझे देख लाखों इन्सानों के पाँवों की ठोकरें खाकर भी मैं विचलित नहीं हुई। लम्बे-लम्बे मार्गों को पार करने के लिए मैं इंन्सानों की मदद करती हूँ। पर फिर भी उसके पाँव मुझे रौंदते चले जाते हैं।"

"सच कह रही हो तुम"—अनुराधा ने एक लम्बी साँस खींची। माथे पर आई बालों की एक लट को झटके से उसने पीछे कर दिया तभी मानो पगडण्डी फिर कह उठी—"अनुराधा, तुम अपने लम्बे मार्ग को शीघ्र पार करने के लिए एक पगडण्डी क्यों नहीं बन जाती? बेशक सब तुम्हें रौंदेंगे, परन्तु तुम तो सबको सहारा दोगी—सेवा और त्याग तुम्हारा धर्म है उसी के लिए मर मिटो, अनुराधा—उसी के लिए मर मिटो।"

अनुराधा को लगा मानो वह पहाड़ी पगडण्डी उसकी चिर-परिचित सहेली है, अनायास ही उसके मुँह से निकला—"तुम ठीक ही कहती हो बहन, इसी प्रकार मुझे प्रेरणा देते रहना ताकि मैं अपने आदर्श को निभा सकूँ। लोग तुम्हें जड़ वस्तु समझ कर रौंदते हैं परन्तु जड़ वस्तु भी प्रेरणा दे सकती है यह मैंने आज ही जाना।" और न जाने क्या सोच कर अनुराधा पगडण्डी पर गई। थोड़ी सी धूल उठा कर अपने

माथे पर तिलक लगा लिया और साथ ही दो मोटे मोटे आँसू टप टप उसके अधरों पर आकर रुक गये। वह कुछ और भी सोचने लग जाती परन्तु आश्रम में प्रार्थना की घंटी बज उठी—टन टन टन करके छः का संकेत मिला। "ओह मुझे आज बहुत देर हो गई—सब मेरी राह देख रहे होंगे"—यह सोचते ही अनुराधा लम्बे लम्बे कदम उठाती हुई आश्रम की ओर चल दी।

* * *

यह कोई बहुत पुरानी बात नहीं है जब अनुराधा बहुत सुन्दर लड़की थी। अच्छे खाते पीते घराने में उसका जन्म हुआ था परन्तु भाग्य की एक ही चोट ने उसे अनाथ और कुरूप दोनों ही बना डाला था। कुल दस वर्ष ही तो बीते हैं यह सब कुछ हुए। गर्मियों की छुट्टियों में जब अनुराधा अपने गाँव आयी थी तब किसे पता था कि माता की बीमारी का प्रकोप होने वाला है—न जाने कैसे यह सब कुछ हो गया। कुछ ही दिनों में उसके माता पिता उसे छोड़ कर चले गये। अनुराधा ने अपनी ही आँखों से उनकी जलती चितायें देखी थीं। चिता की उठती हुई लम्बी २ ज्वालायें उसे कितनी डरावनी लग रही थीं। उनकी याद आते ही वह सिहर उठती थी। लगभग एक ही सप्ताह के भीतर वह स्वयं भी बीमार हो गयी। वह मर तो न सकी किन्तु उसकी एक आँख खराब हो गई और सुन्दर चेहरा माता के दागों से बुरी तरह खराब हो गया। जब बीमारी से उठ कर पहली बार उसने शीशे में अपना चेहरा देखा तो वह चीख पड़ी थी। न जाने भगवान ने किस पाप की सजा उसे दी थी ? महीनों बीत गये, अनुराधा घर से बाहर न निकली। अपना भद्दा चेहरा वह किसी को भी दिखाना नहीं चाहती थी। उसकी सभी इच्छाओं पर पानी फिर गया था। वह सोचती, "इससे तो मैं मर जाती तो अच्छा था" परन्तु मरना क्या मनुष्य के अपने वश की बात है ? अगर मरना आसान होता तो

वह कब की मर गई होती—अस्तु दुखी मन लिए अनुराधा का जीवन बीतने लगा और वर्षों बीत गए।

* * *

उन दिनों जगह जगह सेवा सदन खुल रहे थे। हर जगह श्रमदान की चर्चा थी। कितने ही नर नारी सेवासदनों के लिए अपना सर्वस्व दान कर रहे थे। तभी एक नवीन विचार अनुराधा के मन में आया और उसे ऐसा आभास हुआ मानो वह पुनः सुख प्राप्त करेगी। उसने अपना घर भी सेवासदन के लिए दान दे दिया और वहाँ गाँव की महिलाओं तथा बच्चों को कई प्रकार की शिक्षा देने लगी। पढ़ाई लिखाई करवाती, सीना पिरोना, बुनना सीना सिखाती। उसका अपना मन भी बहल जाता था और वह अपने दुखों को भूल सी रही थी।

एक वर्ष में ही अनुराधा का घर पूरा सेवासदन बन गया। ऐसा लगता था मानो विश्व की सारी शान्ति उसने बटोर कर अपने आश्रम में ही भर ली हो। सीखने वालों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही थी। अब उसने एक गोशाला बनवा दी थी, एक छोटा सा बगीचा भी बन गया था। कितने ही अनाथ बालक अब वहाँ रहने लगे थे। एक ओर चर्खे की क्लास लगती तो दूसरी ओर सीना बुनना सिखाया जाता। कईयों को खाना बनाने की ट्रेनिंग दी जा रही थी। सारा घर पूरा एक योगाश्रम सा बन गया था। स्वयंसेवक खूब मन लगा कर जनसेवा कर रहे थे। अनुराधा सब के साथ व्यस्त रहती थी। वह इतनी प्रफुल्लित थी मानो उसे स्वर्ग का सुख मिल गया हो। नित्य शाम सवेरे वह आश्रम में सभी से प्रार्थना करवाती और उसके बाद धार्मिक ग्रन्थों को उन्हें सुनाती तथा समझाती।

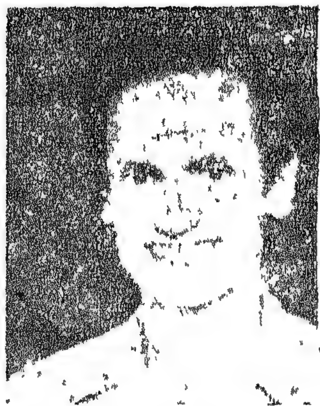
* * *

उस रोज जब अनुराधा घूमने गई तो देखा, लोग किसी को श्मशानघाट ले जा रहे थे। उसे तभी अपने पिछले जीवन की याद

आ गई। दस सालों की पुरानी बातें उसके दिमाग में उभर आई थीं। उसे लग रहा था मानो आज फिर उसके माता पिता की चिता जल रही है—परन्तु खामोश पगडण्डी ने उसे नवजीवन की प्रेरणा दी। उसे फिर यह समझा दिया कि भावना से कर्तव्य ऊँचा होता है और अनुराधा ने समझा कि अपनी भावनाओं का बलिदान कर देना ही सच्चे सेवक का सुख है।

# रामकुमार काले 'सन्यासी'

●



आपका जन्म २ मार्च सन् १९२२ को महापंडित शालिगराम प्रसिद्ध ज्योतिषि के घर हुआ।

आप ने शिक्षा पहले मुल्तान फिर लाहौर में पाई और इन्हीं स्थानों पर साहित्य के क्षेत्र में भी नाम अर्जित किया। कुछ समय तक आपका सम्बन्ध लाहौर में फिल्म क्षेत्र से भी रहा

आप उन इने गिने लोगों में से हैं जिनमें एक साथ कई गुण हैं। आप चित्रकार, कहानीकार, नाट्यकार, अभिनेता, गीतकार सभी कुछ हैं।

आप ने आज से लगभग १६ वर्ष पूर्व कहानियाँ लिखनी आरम्भ की। आप कहानियों के लिखने के अनूठे ढंग, एकदम नए भाव तथा कथानक के लिए लोक प्रिय एवं प्रसिद्ध हैं।

सन् ५५ से आप आकाशवाणी शिमला के हिमाचल प्रोग्राम में सर्वोपरि स्थान प्राप्त किए हुए हैं। आप ही रेडियो के प्रोग्राम के 'कलाकार' हैं जिन्हें हर सुनने वाला जानता है इनकी बादल जैसी गम्भीर आवाज से।

# हम स्वर्ग से बोल रहे हैं

स्वर्ग-लोक अपने सुनने वालों से मुखातिब है। स्वर्ग-लोक की घड़ियों के बेवक़्त-वक़्त बन्द के मुताबिक इस वक़्त, वक़्त बड़ा नाज़ुक है। लीजिए अब आप 'मुफ़' से समाचार सुनिए। यह कार्यक्रम एक साथ बेशुमार मीटरों पर स्वर्ग-लोक तथा नरक वाणी से एक साथ प्रसारित किया जा रहा है। धरती लोक के सुनने वाले हमारे इस कार्यक्रम को शून्य मीटर बैण्ड पर सुन सकते हैं। लीजिए पहले अलकापुरी के समाचार सुनिए।

समाचार मिला है कि जन्नत रोड से कुछ ही दूर पर जहन्नुम चौक पर, कुछ आशिक़ों ने इन्द्र की अप्सराओं पर फूलों से हमला बोल दिया, घटना की सूचना पाते ही देवों, गन्धर्वों ने मौक़े पर पहुँच कर एक ग़ज़ल गाकर आशिक़ों को बेहोश कर दिया। कहा जाता है—आशिक़ों का यह गिरोह अप्सराओं की मुस्कान पर मरने आया था।

× × × ×

कल स्वर्गलोक यूनिवर्सिटी ने 'मुहब्बत', 'इन्तज़ार' तथा 'खुदकशी' परीक्षाओं का परिणाम घोषित कर दिया है। मुहब्बत की परीक्षा का परिणाम इस वर्ष शत प्रतिशत रहा। इन्तज़ार में केवल पच्चीस प्रतिशत तुलबा पास हुए। खुदकशी केवल एक ही आदमी ने की।

× × × ×

आज सवेरे महाराज इन्द्र के इजलास में रम्भा नामक विख्यात अप्सरा की मृत्यु, हृदय की गति रुक जाने के कारण हो गई। यह बतलाया जाता है कि दरबार में बैठे हुए किसी ऋषि के ज़ोर से ठहाका मार कर हँसने के कारण ही यह दुर्घटना घट गई।

एक और समाचार के अनुसार स्वर्गलोक के मैदानी इलाक़ों में बिरहिणी अप्सराओं के कारण तापमान बढ़ गया है। इन वियोगिनी स्त्रियों को सरकार जल्द से जल्द स्वर्गलोक के उन प्रदेशों में भिजवाने का प्रबन्ध कर रही है जहाँ कि साल भर हिम रहता है। स्वर्ग के प्रधान मन्त्री ने इस प्रस्ताव की निन्दा की है। उन्होंने बतलाया कि पहले भी कुछ वियोगिनी देवांगनाओं को बर्फानी स्थानों पर ले जाने के कारण हिम के अधिक पिघलने से देश भर में बाढ़ आ गई थी। उन्होंने सुझाव दिया है कि मर्त्यलोक से बात चीत करके मर्त्यलोक में स्थित लिबिया नामक प्रदेश में उनके रहने का प्रबन्ध किया जाए।

× × × ×

स्वर्गलोक की 'मनुष्य पाल्टियों' (म्यूनिसिपेलिटी) ने उद्यानों में फूलों के बोने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। क्योंकि फूलों की पंखड़ियों से टकरा कर कई अप्सराओं के शरीर कट गए कहे जाते हैं।

× × × ×

आज स्वर्गलोक के एक प्रैस सम्मेलन में मर्त्यलोक के प्रतिनिधि ने एक सम्वाद का खण्डन करते हुए कहा कि यह समाचार झूठ है कि शिमला के स्कैंडल प्वाइंट पर कुँवारों ने सत्याग्रह किया।

× × × ×

आज स्वर्गलोक में वहाँ के एक 'नरकिया' नामक सुरम्य स्थान पर एक सार्वजनिक सभा हुई। सभा के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए मिस्टर 'सिंगल' ने जो कि वहाँ की आशिक़ सुधारिणी सभा के प्रेज़िडैंट भी हैं—कहा कि हमारी सरकार अपनी सौ साला योजना में इस बात पर विचार कर रही है कि बच्चों के लिए नए ढंग के पाठ्यक्रम तैयार किए जाएँ। 'सिंगल' जी ने कुछ क़ायदों के नमूने इस प्रकार पढ़े। पहिले सुनिए 'कच्ची' 'पक्की' के बालकों की पहली पुस्तकों के नमूने।

जैसे—बीड़ी पी, पढ़ना छोड़, हीरो बन, टाई की नॉट ठीक कर, 'बरसात' में नर्गिस काम करती है, पान की बीड़ी दिल्ली में बनती है,

और बड़े कायदों के नमूने इस प्रकार थे :—

स्पीच दे, पाऊडर लगा, सिनेमा चल, हम नित्य माल पर घूमने जाते हैं, पुस्तकों के पैसे से सूट सिलवा, रमाशंकर ४ साल से फेल हो रहा है, बिल बढ़ा पेमैंट न कर, पहली को उधार वाले से बच कर चल, आदि। मि० सिंगल ने कहा कि इससे बच्चों का बाहरी ज्ञान बढ़ जाएगा। उन्होंने विश्वास दिलाया कि सरकार कन्याओं के लिए भी शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था करने वाली है।

× × × ×

आज स्वर्ग में माता सरस्वती के निवास के सामने कुछ मरहूम कवियों और लेखकों की आत्माओं ने सत्याग्रह अन्दोलन आरम्भ किया। इन लोगों की माँग है कि मृत्युलोक में यूनिवर्सिटियाँ उनकी किताबों की छपाई में शुद्धता का ध्यान नहीं रखतीं, तदुपरान्त उन्होंने तालीम की इन "थोक दुकानों को बन्द करो" के नारे भी लगाए।

× × × ×

अभी, समाचार मिला है कि भगवान विष्णु मर्त्यलोक की यात्रा से लौट आए हैं। उन्होंने हमारे प्रतिनिधियों के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थता प्रकट की, क्योंकि मृत्युलोक वासियों द्वारा आविष्कृत डालडा नामक द्रव्य की बदबू से उनका सिर चकरा रहा था। सुना जाता है कि वे शीघ्र ही एक दवन्नी का रेडियो-मनिआर्डर मर्त्यलोक के किसी 'टी स्टाल' के नाम करने वाले हैं। ध्यान रहे श्री विष्णु इस यात्रा पर बिना पैसों के ही निकल गए थे।

× × × ×

पिछले दिनों स्वर्गलोक की अवैधानिक सभा में मर्त्यलोक के कुछ वैज्ञानिकों का एक पत्र जो सरकार के नाम भेजा गया था —पढ़ कर सुनाया गया था। पत्र में वैज्ञानिकों ने अणु शक्ति को शक्तिशाली बनाने के लिए महर्षि दधीचि की अस्थियों की माँग पेश की है। सुनने में आया है कि वहाँ की सरकार ने इन वैज्ञानिकों को स्वर्ग में आने की

स्वीकृति इस शर्त पर दी है कि वे शरीर सहित स्वर्ग में नहीं आ सकेंगे।

× × × ×

स्वर्ग की पवित्र आत्माओं का एक शिष्टमण्डल गत सप्ताह श्री विष्णु से मिलने क्षीर सागर गया था। मण्डल ने एक प्रस्ताव श्री विष्णु के सामने रखा था कि स्वर्ग के जो प्रतिनिधि मर्त्यलोक में भ्रष्टाचार फैला रहे हैं उन्हें फौरन वापिस बुला लिया जाए। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि वहाँ से लौटने वाले प्रतिनिधियों को किसी प्रकार की सम्पत्ति साथ लाने की आज्ञा न दी जाए।

× × × ×

यमपुरी के समाचारों से ज्ञात हुआ है कि वहाँ के प्रधान निर्णायक श्री चित्रगुप्त ने लार्ड मेकाले और उनके साथियों पर लगाए गये अभियोग का फैसला सुना दिया है। मेकाले एण्ड पार्टी पर इस बात का आरोप था कि उन्होंने मृत्युलोक के पूर्वी भाग में स्थित एक देश में साहित्य और शिक्षा के ढंग को बदल कर वहाँ की संस्कृति को जो हानि पहुँचाई, वह ग़ैर क़ानूनी है। इसलिए उन्हें और उनके साथियों को पहले फाँसी और फिर उमर क़ैद की सज़ा सुना दी है।

× × × ×

ये समाचार स्वर्गलोक से सुनाए जा रहे हैं। कल यमपुरी के 'कुम्भीपाक भवन' में पापी परिषद ने निर्णय किया कि नए दण्ड विधान के अन्तर्गत, पापियों को 'रोस्ट' करके उनके 'टोस्ट' बना दिए जाएँ।

× × × ×

...समाचार समाप्त हुए। अब आप आज के भाव सुनें। कथा पाठ, सिर्फ़ रीडिंग, सवा रुपया। मय मीनिंग के ५ रुपया, शुद्ध मन्त्र उच्चारण आठ आने हज़ार, गड़बड़ उच्चारण छ. आने हज़ार। डेविको, बालरूम, सिसल तथा स्कैण्डल प्वाइंट पर रोज़ सतसंग होता है, भक्तजन लाभ उठाएँ।

---

# प्रथम वियोगिनी

कल्पना सृष्टि का पक्षी है वह उड़ता है, किसी नीड़ से और उसकी इस उड़ान की थकन भी किसी नीड़ पर ही विश्राम करती है, कल्पना विश्व से परे भी जाती है परन्तु उतनी और वैसे ही जैसे उड़ते समय पक्षी धरातल तो छोड़ देता है परन्तु रहता उसी के आकर्षण में है। कल्पना उड़ान के समान ही एक 'निराधार' रचना है परन्तु आधार के आस-पास रह कर। सुदूर अतीत में जब यह सृष्टि बन चुकी होगी, परन्तु इसकी गतिविधि तथा विकास व्यवस्था की केवल प्रयोगावस्था होगी; आकाश गंगा के समान धुंधले उस सृष्टि के अभ्युदय की ओर आज भी मानव की कल्पना दौड़ जाती है। वास्तव में जीवन क्या है ? जन्म और मरण के मध्य एक संकुचित सा वायुमण्डल जहाँ प्राणी जी तो सकता है परन्तु सन्तोष प्राप्त नहीं कर पाता, पूर्णता की तृप्ति वहाँ नहीं ! तभी तो मानव कभी जन्म के महाद्वार और कभी मृत्यु के महा-कपाट खटखटा कर उनके परे भी देखना चाहता है परन्तु यह कपाट एक जीवन के लिए एक ही बार खुलते हैं, और उस समय प्राणी वैसा ही अबोध तथा ज्ञान शून्य होता है जैसे, विकास से पूर्व और उसके उपरान्त झड़ जाने पर पुष्प, दोनों ही स्थितियों में सौरभ का अभाव रहता है।

एक और बात जीवन में 'प्रथम बार' का बड़ा महत्व है। रवि की प्रथम किरणें प्राची में जिस स्वर्ण का निर्माण करती है, मध्याह्न का यौवन भी उसे नहीं कर पाता। प्रणय के प्रथम दर्शन मात्र में जो सुख है, उसकी तुलना में विश्व भर के मिलन भी अकिंचन ठहरते हैं। यौवन के मुख पर छाने वाली लज्जा की पहली लाली जो महत्व रखती है, उस झाँकी को चित्रित करने में, यौवन सारी आयु भी लगाये तो भी

सफल नहीं हो पाता। उदय और अस्त, विकास और ह्रास का यह आदिम विधान जिस दिन जीवधारियों पर, विशेषकर पूर्ण चेतन मानव पर घटित हुआ होगा—उसी दिन, वह पहली मृतक मानव देह वियोग की रचना सी, नश्वरता का पहला उपदेश, सारे विश्व की अपूर्णता का पहला आभास, कैसा रहा होगा ? तब का निरुपाय जीवन न समझ पाया होगा। कुछ भी हो जैसे जड़ यन्त्र अपनी गति के रहस्य को नहीं समझ पाता जीवन ज्योति, उस रवि के समान रही होगी जो विश्व भर को भासित करके भी स्वयं को नहीं दिखा पाता। मरण, प्रथम बार विश्व में क्या भाव लेकर आया पहले दिन महाकाल ने प्रतिशोध को अपना साधन बनाया, या स्वार्थ को अथवा आत्मरक्षा के संघर्ष से ही चिता की यह ज्वाला जल उठी; अथवा अज्ञान उसका पहला कारण बना कुछ भी हो परन्तु आत्मघात से मृत्यु का आरम्भ नहीं हुआ। ज्ञान से शोषित, बुद्धि के दास आज के मानव की ही यह दुर्बलता हो सकती है।

मानव-सृष्टि का आरम्भ था—देव या पुरुष और यजनी थी नारी—और उनकी एक सन्तान भी थी, नवजात। उनकी आयु उनके जीवन की रूपरेखा, उनके आस-पास घिरे वातावरण के सम्बन्ध में (कल्पना में) नहीं भटकना चाहती। एक दिन देव की बाट को देख रही थी, यजनी। उसे एक चीख सुनी और दूसरे ही क्षण मुख से रक्त उगलते हुए अस्तव्यस्त देव ने प्रवेश किया।

लड़खड़ाते देव को यजनी ने अपनी बाहुओं को सहारा देकर गिरने से बचाया। उसने देखा नित्य की तरह आज देव वैसा नहीं था, देव के मुख से श्वेत फेन निकल रहा था, मुखाकृति और दिनों की भाँति यजनी के संसर्ग में रसमग्न व स्निग्ध होने के स्थान पर उस श्वेत पट के समान हो रही थी, जिस पर आए क्षण क्लांतियों के रेखाचित्र उभरते और मिटते रहे हों। वह यजनी पर लुढ़क सा पड़ा। कठिनता से नेत्र खोले देव की पथराती हुई दृष्टि पर छाती हुई वह मलिनता संयोग के विधु

पर घिरती हुई बदली थी। पलकें वैसे बहुत छोटी होती हैं। परन्तु उनके गिरते ही विश्व ही ओझल हो जाता है। साँसें भी नन्हा सा अस्तित्व रखती हैं किन्तु जब भी रुक जाती हैं तो भगवान नीलकण्ठ के ताण्डव के साथ ताल देने वाला प्रलय का वायु भी उस नन्हें से मन में चेतना का संचार नहीं कर पाता। देव के मुख से एक दवा हुआ, विकल क्रन्दन निकला मानों भाषा का शिशु पहला वीर रो पड़ा हो। देव के नेत्र छलछला रहे थे। धीरे-धीरे रुकती हुई साँसों के साथ जब देव की पलकें गिर चलीं तो दोनों नेत्रों के कोरों में दोनों ओर बड़े बड़े अश्रु बिन्दु कुछ बाहर निकल कर ठहर गए पलकों के भार से दब कर बहे नहीं। देव की काया के समान ही उनमें भी प्राण नहीं थे। गति पर जीवन का एकाधिकार है, इससे पूर्व कि वे बहने की तैयारी करें देव स्थिर हो चुका था। आँसुओं के वे दो बिन्दु भी उसी प्रकार ठहर गए जैसे स्रोत के सूखने पर प्रवाह ठहर जाता है—प्रेरणा के रुकते ही क्रिया रुक जाती है। कराह के रूप में अभिव्यक्ति के इस नए रूप ने जीवन के लक्षण को पूर्ण किया वैसे ही जैसे झड़ती हुई पंखुड़ियाँ विकास के लक्षण को पूरा करती हैं। जीवन की कथा पूर्ण हुई—और उसकी व्याख्या करने को बच रही यजनी। इस समस्या को सुलझाने के लिए यजनी की जलती चेतना को अनायास वह प्रयास करना ही पड़ा, जिसके फलस्वरूप विवेक और ज्ञान को प्रणियों का यह विश्व पा सका। अभावों की प्रयोगशाला में ही यजनी ने आज के सम्पन्न जीवन की रूप-रेखा बनाई।

मृत्यु तो सामने थी यजनी के जो देव के अभंग मौन में अपने को व्यक्त कर रही थी देव का निर्जीव शरीर ही मानो मृत्यु का पूर्ण चित्र था। जैसे कवि चंचल भावनाओं को भाषाबद्ध करके उन्हें स्थिर बना कर काव्य की रचना कर देता है मानो महाकाल ने भी देव की समस्त चेतनात्मक चंचलता को हर कर उस अटल स्थिरता के रूप में मरण को चित्रित कर दिया था। जीवन के काव्य की यह अन्तिम मूक पंक्ति

मानो समस्त रचना का निष्कर्ष बन कर रह गई हो। मृत्यु में जीवन का सा वैचित्र्य नहीं। उसका एक ही विश्लेषण है भाषा के उस शब्द के समान जो अपनी परिधि में एक ही अभिव्यक्ति को पाले रहता है। उन रेखाओं के समान जो एक विशेष क्रम में आकर एक आकार विशेष हो रहती हैं। परन्तु यजनी जीवन को नहीं समझ पा रही थी जीते हुए, फिर इस चिर मौत का स्पष्टीकरण तो उसके लिए असम्भव था।

शायद देव की यह आज की न जागने वाली निद्रा भी एक नई बात की अभ्यस्तता उत्पन्न करके, यजनी के अज्ञान के उस बन्द प्रकोष्ठ में एक नवीन वातायन खोल जाय, विवेक का। ज्ञान कोई नदियों के संचय से पूरित होने वाला सागर थोड़े ही है, वह तो वह महासागर है जो अगणित युगों की लम्बी राह पर चल कर एक बूंद के संचय से बन पाया है। और-प्राणी का एक जीवन यदि एक बूंद बन कर उसमें किंचित संचय करने की परम्परा भी निभा सके तो उस जीवन की सार्थकता समझनी चाहिए।

यजनी सूंघ सकती, पर बोल न पाती वह सुन सकती थी परन्तु समझ न पाती, यजनी को चारों ओर से विवशता घेरे हुए थी। परन्तु यह विवशता आज के मानव की विवशता के समान न थी कि आज वह अपनी समस्त शक्ति साधनों को हस्तान्तरित कर चुका है, उपयोग के विवेकपूर्ण विचार से भी वह हीन हो बैठा है। यजनी की विवशता थी अभाव की, वैसे सामर्थ्य की वह प्रतिमा थी तब। तभी तो वह अभावों में जी पा रही थी।

यजनी ने सोचा देव रूठ गया है। कितनी भोली व्याख्या है; और सचमुच रूठना ही तो है! मरण को इतना भयप्रद आकर ज्ञान ने ही तो दिया है। काश! आज भी यदि मरण की इतनी सरल व्याख्या कर पाए मानव, तो उतनी यातनाएँ न सहनी पड़ें उसे, जितनी कि मरण के विचार मात्र से वह सहने पर बाध्य हो उठता है। यातनाओं का प्रभाव क्षेत्र वास्तव में जीवन ही है; मृत्यु तो उस क्षेत्र की सीमा है। कई

दिन इसी प्रकार बीत गए। यजनी भी बंधी रही किसी अज्ञात अव्यक्त बन्धन से, शायद यही बन्धन मोहजाल का पहला सूत्र था। अन्धकार हो चला था, मानो प्रकृति के मुख पर उदासीनता छा गई हो। ज्ञान पूर्ण किन्तु मूक प्रकृति कैसे समझाए यजनी को कि उससे देव को छीन लिया गया है। संध्या समय की गहरी लालिमा में प्रकृति ने उदासीनता-पूर्ण वह समाचार सान्ध्य पक्षियों के चीत्कार में समझाया परन्तु यजनी नहीं जान पाई। रात्रि के पवन ने ओस कणों से मिल कर एक शीतलता उत्पन्न करके यजनी को निर्जीवता के ठण्डेपन की परिभाषा समझाने का प्रयत्न किया किन्तु यजनी फिर नहीं समझी। देव के मृत शरीर से उठने वाली दुर्गन्ध ने, नश्वरता के चित्र को साकार कर दिया। यजनी अब भी नहीं समझ पाई। दूसरे ही क्षण, देव की निर्जीव काया यजनी की बलिष्ठ भुजाओं में आबद्ध थी। पता नहीं क्या सोच कर! परन्तु भाषा का अनुमान ऐसा कहता है मानो यही प्रेम और सहानुभूति की प्रथम रचना थी। आज प्रत्युत्तर में देव की भुजाऐं नहीं उठीं और ना ही यजनी ने वह आवेग देव के मुख पर देखा जिसे वह देखने की अभ्यस्त हो गई थी; जिसे देख कर वह और कुछ नहीं देखना चाहती थी। देव का मुख रहा उस पुष्प के समान स्थिर जो मूल के कट जाने पर विकास का त्याग कर देता है। और—यजनी लिपटी थी देव से उसी प्रकार जैसे मोह जीवन से लिपटा रहता है। व्यर्थ में ऊपर आकाश में काली घटाओं में रह-रह कर तड़ित का तीव्र आलोक, उस अन्धकार में चमक उठता और उसी में विलीन हो जाता—अन्धकार फिर वैसा ही बना रह जाता। मेघों का क्रन्दन होता परन्तु शून्य का विशाल मुख उसे भी पी जाता। इस जलन और क्रन्दन की सीमा होते हैं कुछ जल कण जो बरस पड़ते हैं और धरती में समा रहते हैं। आत्मा के इन श्वेत रक्त कणों से धरातल सिंच कर महातीर्थ हो जाता है। दूसरे ही क्षण जीवन के विवश पाँव उसे स्वयं ही कुचलते हुए निकल जाते हैं।

मानो महाकाल ने देव के बदले प्रेम और ममता का यह अमूल्य

उपहार मृत्युलोक के स्मृति चिन्ह स्वरूप यजनी को प्रदान किया हो। यजनी ने आज अपनी सबसे बड़ी वस्तु देकर विश्व की सबसे बड़ी वस्तु पा ली, परन्तु उसे न तो खोने का ज्ञान था और न पाने का पता।

यजनी शिशु सहित वहीं बैठी रही। उसकी अभिव्यक्ति रहित अनुभूति थक कर ऊँघने लगी। प्रातः को जब उसने नेत्र खोले तो देखा कि दूर पूरब में ऊषा की गहरी लालिमा के समान ही दावाग्नि वन को अस्थिर किये हुए है। यजनी ने काल के इस ताम्रवर्ण तेजस्वी रूप को देखा, उसके दाह को अनुभव किया। शिशु ने विकलता से माता के वक्ष में सटते हुए इसका समर्थन किया। आखिर सजीवता में अन्तर स्पष्ट हो ही गया।

एक अज्ञात प्रेरणा ने यजनी के पाँवों में गति भरदी और भाग चली, विपरीत दिशा में। निर्मोह से नहीं विवशता से। देव नहीं भाग सका, वह गति जो खो चुका था, उसे कष्ट भी नहीं, हो रहा था, उसे न तो यजनी से पृथक होने पर क्षोभ था, न ज्वाला से विकलता या क्लान्ति। देव काया जलकर भस्म हो गई। यजनी हैरान थी—मार्ग दीखता है—ज्वाला दीखती है—देव क्यों नही दीखता। दिखेगा भी नहीं इस बात पर विश्वास लाने के लिए उसके ज्ञान में केवल दाह था जो अपना अस्तित्व दिखा सके, किरणें नहीं थी जो भविष्य को आलोकित भी कर सकें। यजनी को अनुभव करना आता था, कल्पना नहीं। फलतः देव नहीं दीखा। पौ फट आई थी, आकाश पर के आलोक बिन्दु धीरे धीरे मिट रहे थे। और उनके घटते हुए आलोक के धुंधलेपन के समान ही यजनी के मानसपटल पर अंकित देव का चित्र भी अपना स्वरूप खो रहा था। इस विस्मृति में, कालान्तर में बच रहा था यजनी का शून्य हृदय, उस अम्बर की भाँति जिसमें निराशा नीलिमा बनकर फैली थी, केवल नीलिमा—वह नीलिमा ही थी, वास्तव में था कुछ नहीं। शिशु यजनी के साथ था, वह उसे देख पाती…स्पर्श कर पाती अनुभव करती। और इस रूप स्पर्श आदि की प्रत्यक्षता में यजनी भूल गई

देव को जैसे विश्व की मूर्त्तता में प्राणी व्यापक ब्रह्म को भूल जाता है। और—अज्ञान ने बचा लिया यजनी को फिर मिलने के कल्पना-चित्रों की उस व्यर्थ की रचना से जो आत्मा पर केवल बोझ मात्र बन पाती है। जीवन इस महा प्रत्यक्षता का नाम है और इसी पर विश्वास करना जीवन का कर्त्तव्य है। अज्ञान का सारपूर्ण विचार ही तो वह महान देन है जिसे ज्ञान भी नहीं पा सकता।

ज्ञान तो इस मूर्त्त से परे, अमूर्त्त में अनिर्वचनीय में, अदृश्य में, अस्पृश्य में भटक कर अपनी अज्ञानता के दर्शन करता ही रहता है;—महानता को देखने जाकर हीनता देख आता है, जीवन की व्यापकता को देखने जाकर उसका अवसान देख आता है। शून्य में, निराधार में, कल्पना को आधार मान कर वह इतनी ऊँचा उड़ जाना चाहता है जहाँ से यह सृष्टि एक दृश्य लगे, परन्तु पहले ही पग में धरती पर आ रहता है। किसी को पाने जाकर स्वयं को खो आता है।

पर—जिज्ञासा है जो मनुष्य को शान्ति से नहीं बैठने देती उसकी प्रेरणा, जीवन को चलाए रहती है, उस वायु के झोकें के समान जो तरंगों को अनजाने तट का प्रलोभन देकर वहन के लिए बाध्य करती रहती है। निशा के धुंधले आवरण के समान विस्मृति आती तो यजनी देव को भूली रहती, परन्तु फिर स्मृति का प्रभात होता यजनी को एक एक कर सब बातें स्मरण आने लगतीं। एकान्त रातों में जब यजनी ऊपर आकाश की ओर देखते हुए अपने शिशु को वक्ष से लगाए हुए पड़ी रहती और वैसे ही सो जाती तो देव दीखता उसके पास बैठता, और बोलता भी। यजनी भी बातें करती। जागकर शब्द तो स्मरण नहीं रहते परन्तु भाव यह होता कि तुम कहाँ चले गए हो ?…मेरे पास क्यों नहीं रहते ? देव केवल यह कह कर कि मैं तो तेरे ही पास रहता हूँ यजनी को बाँहों में समेट लेता। यजनी भी देव को बाहु-पाश में कस लेती। यजनी की निद्रा उचट जाती और वह पाती अपनी बाँहों में आबद्ध शिशु को वक्ष पर क्रीड़ा करते हुए।

अन्तहीन जिज्ञासा यदि मानव को दूर दूर तक भटकने का अवकाश और प्रेरणा देती है तो स्थान स्थान पर बन्धन व अवरोध एक निर्दिष्ट सीमा में चलने का संकेत देकर पथ की नींव डालते हैं और कभी मार्ग में अड़े अवरोधों की विशाल-शिला, जिज्ञासा और इच्छा-शक्ति से प्रेरित मानव से इतना भारी प्रयत्न भी करवाती है कि उस महा अवरोध के हटते ही, जीवन कुछ और ही हो जाता है। देव की मृत्यु भी ज्ञान का वह प्रथम बिन्दु था, जिसमें सत्य, या सार था, और उसका प्रथम संचय आरम्भ हुआ यजनी के शून्य मानस घट में। मृत्यु का यह पहला मूक संकेत था जिसमें आज की सब भाषाएँ निहित थीं। यजनी का जीवन उसी संकेत की व्याख्या में बीता और यजनी की सन्तान ही आज तक उसका विश्लेषण करती आ रही है। यजनी के समान ही आज भी जीवन कुछ खोकर कुछ पा रहा है।

---

# जयदेव शर्मा 'कमल'



'कमल' जी का जन्म २६ जुलाई सन् १६३१ को महेन्द्रगढ़ी मथुरा में सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतज्ञ पं० दीपचन्द्र शर्मा के घर हुआ।

माता-पिता 'कमल' जी को उच्च शिक्षा दिलाकर कोई उच्च सरकारी पद दिलाना चाहते थे। परन्तु सन् '४२ का आन्दोलन कवि के जीवन में महान् परिवर्तन बनकर आया। पढ़ाई लिखाई छोड़कर राजनीति की ओर आकर्षण हुआ। उसके पश्चात् सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता स्व० ठाकुर हरदेव सिंह की सलाह से I.A.M.C. (वर्तमान A.M.C.) की बाल-कम्पनी में भर्ती हो गए। १६५० में आप सेना से लौटकर घर लौट आए और शिक्षा की भूख फिर जागी और १६५१ में साहित्य रत्न की परीक्षा पास की।

१६५३ में आप पिता के साथ शिमला आए और यहाँ पर कुछ दिनों भारतेन्दु विद्यापीठ के प्रिंसिपल रहे। फिर लगभग अढ़ाई वर्ष तक आकाश-वाणी शिमला में रहकर आजकल आप आकाशवाणी लखनऊ के स्टाफ में हैं।

आप कवि के रूप में देशभर में प्रसिद्ध हैं परन्तु कहानियाँ भी आपने उच्चकोटि की लिखी हैं। आपकी जो थोड़ी सी कहानियाँ पाठकों को मिली हैं उनकी सराहना ही हुई है।

# रोगी हैं वे.. ......!

'कुटिल' जी से एक बार ग्वालियर जाते हुए रेल में भेंट हो गई। 'कुटिल' जी 'आभास' के स्थायी लेखकों में से थे।

अपने प्रिय लेखक के—गद्य-पद्य—काव्य के—द्वारा तो हर मास दर्शन होते थे। शायद एकाध बार उनका चित्र भी प्रकाशित हुआ था। अतः जब मैं दिल्ली स्टेशन पर ग्वालियर के लिए पंजाब मेल में चढ़ने लगा तो दिमाग़ और याद्‌दाश्त ने पूरा सहयोग दिया, मैंने झिझकते हुए कह दिया—"क्षमा कीजिएगा मैं आपको 'कुटिल जी' मान बैठा हूँ।"

गाड़ी जाने वाली थी, अतः मैं और वे दोनों ही चढ़ गए। उन्होंने डिब्बे में अपने और मेरे लिए स्थान बनाते हुए कहा—"अगर तो आपने केवल नाम से ही मुझे माना है तब तो ठीक है—अन्यथा मैं 'कुटिल जी' की अपेक्षा 'कोमल जी' हूँ।"

एक तो मन चाहे लेखक—साहित्यिक से भेंट दूसरे शिष्ट हास्य तीसरे यात्रा—समागम। प्रसन्नता शरीर के हर रोम छिद्र से झाँक उठी। वास्तव में मुझे उनसे मिलकर जितनी प्रसन्नता हुई न कह सकता हूँ न लिख सकता! केवल संकेत कर सकता हूँ सो कर दिया।

"कुटिल जी! धृष्टता के लिए पहिले ही क्षमा माँगे लेता हूँ। आप जब इतने ऊँचे साहित्यकार हैं तो 'आभास' के अतिरिक्त अन्य किसी पत्र-पत्रिका में क्यों नहीं लिखते?"

'कुटिल जी' खूब हँसे और जी भर कर हँसे बोले "पाठक जी (परिचय हो ही चुका था) 'आभास' में भी क्यों लिखने का दुःसाहस हुआ यह एक रहस्य ही नहीं छायावाद सहित रहस्यवाद है।"

बात आज से छः वर्ष पुरानी है। मैं अपने किसी सम्बन्धी की लड़की के विवाह में गया था। वहाँ उनके किसी सम्बन्धी के घर की चन्द्रिका यानी कन्या ने मुझे देखकर और न जाने क्या सोचकर मुझसे ही विवाह करने की ठान ली। दुर्भाग्य से वह कन्या मेरे पिता जी के एक मित्र की निकली। अब क्या था वह एक दिन किसी बहाने हमारे घर भी आ गई। घर पर वृद्धा माँ थी। भाई बहिन अपने है कोई नहीं, अतः गृहस्थ का सारा काम कामकाज वृद्धा माँ को करते देख उन्होंने माता जी से जोश में आकर कह दिया—"माता जी मैं आपकी बहू बनकर आपकी सेवा करना चाहती हूँ। क्या आप मुझे स्वीकार करेंगी ?"

"माँ ने एक गहरी साँस भरते हुए कहा—'बेटी—काश, कि तुम मेरी बहू बनतीं ?' बात तो लम्बी है परन्तु पाठक जी का सार यह था, कि मेरे पिता जी ने सन् १६१८ में किसी विशेष परिस्थिति में विधवा विवाह किया था। मैं भी उसी पुनर्विवाह की सन्तान हूँ। अतः पिता जी के मित्र होते हुए भी कन्या के माता-पिता मेरे साथ उसका विवाह करने को तैयार न हुए।"

"उन्होंने जबरदस्ती कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह किसी दूसरे स्थान पर करना चाहा, परिणामस्वरूप जब बारात कन्या वालों के घर पहुँची तो कन्या ने इस लोक की लीला समाप्त कर दी। मैं और पिता जी भी विवाह में सम्मिलित हुए थे, अतः अर्थी ढोने के लिए भी अगुआ बने।"

'कुटिल जी' सुनाते सुनाते विभोर हो उठे। उनकी दोनों कोर आँसुओं से भीग गईं। उनकी दशा देखकर तो मैं इस करुण कथा को यहीं रोकना चाहता था, किन्तु करुण भाव या तो जगाने नहीं चाहिएँ और अगर जगा दिए जाएँ तो उन्हें पूरी तरह व्यक्त होने देना चाहिए। ऐसा आप जैसे विद्वानों से सुन रखा था। अतः समवेदना के सही रूप में मैं भी साँसें भरता रहा।

कुछ क्षण रुककर 'कुटिल जी' फिर बोले "मैंने अपने हाथों उस कुमारी पत्नी की चिता जलाई। उसकी कपाल क्रिया से लेकर शेष सभी क्रियायें कीं। तब से मैं 'कुटिल' बना। चतुराई के भाव में नहीं, कठोरता के भाव में। तभी मेरी समझ में आया, कि अगर मेरे पिता जी मेरी माता जी से विवाह न करते और समाज के ठेकेदार उन्हें समाज की गन्दी गलियों में धक्का दे देते तो दुनिया की नजर में न्याय होता। क्योंकि वह बिचारी उनके विषय भोग की सौदेबाजी से बचकर एक पुरुष के आँचल से लिपटीं अतः उनसे उत्पन्न सन्तान को उस भारी अपराध की सजा भुगतनी लाजिमी थी।"

"साथ ही इस अपराध की सजा एक नन्हे मासूम हृदय को भी भोगनी पड़ती थी, क्योंकि उसने मुझ जैसे असामाजिक प्राणी से विवाह करने का प्रस्ताव अपने घर वालों के सामने रखा। मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था। किन्तु पाठक जी जो कुछ हुआ मेरी आँखों के आगे हुआ, अतः कम से कम आज तो उसे सत्य मानने पर विवश हूँ। हाँ आपको विवश नहीं कर सकता।"

"कन्या जिनकी थी उनकी एकमेव थी। एक पुत्र भी है पर कन्या-कन्या है, पुत्र-पुत्र। मेरे साथ-साथ उन्हें भी अपनी भूल का 'आभास' हुआ और उन्होंने भी जो एक स्वयम् एक अच्छे पत्रकार थे 'आभास' पत्र चलाया। उन्होंने अपने जीवनकाल में कई बार मुझे कुछ लिखने को कहा, किन्तु मैं न लिख सका।"

"पता नहीं विधाता को क्या मन्जूर था? उनका भी शरीर पंच-भूतों में विलय गया। सम्बन्ध इस मौत ने निकट के कर दिए।"

इस बार फिर 'कुटिल जी' की पलकें भारी हो गईं। मैं बीच-बीच में हैं—हाँ करने से भी घबराने लगा। बस एकाग्रचित सुनता रहा।

"मैंने सर्वप्रथम 'आभास' में उनके निधन पर एक 'शोकांजली' छपने को दी। उनके बाद में कुछ न कुछ लिखता ही रहा। अब

'आभास' उनके सुपुत्र के हाथों में था उनका आग्रह मैं टाल नहीं सकता था। अतः लिखता ही रहा। इधर एक घटना और हुई। कुछ दिनों तक तो मेरे पूज्य पिता जी एवम् माता जी मौन रहे, परन्तु समाज में उन्हें अपना अपमान कचोटने लगा। अतः उन्होंने जहाँ-तहाँ मेरे विवाह की सांठ-गांठ शुरू की। आखिर इस विशाल वसुधा पर किसी भी पूर्ति की कमी थोड़े ही है ? मैंने विवाह इसलिए स्वीकार किया, कि माता-पिता की सामाजिक प्रतिष्ठा अपने खोए हुए स्थान को पुनः पा जाये।"

"किन्तु इधर प्रतिष्ठा लौटी तो मेरी साधना गई। कारण पत्नी जी ऐसी मिलीं, जो मुझे तो प्रेरणा क्या देती ? उल्टे मेरे लिखने-लिखाने में बाधक बनने लगीं। उधर विधाता को न जाने क्या सूझी उन्होंने माँ को भी संसार छोड़ने की आज्ञा दी।"

अब की बार मैं भी अपने आँसू न रोक सका। 'कुटिल जी' सजल आँखों को पोंछ, फिर आगे बढ़े। "ज्यों-ज्यों मेरे सगे मुझसे बिछुड़ रहे थे, त्यों-त्यों लेखनी मेरी सहचरी बनती गई। मैं लिखता रहा। 'आभास' के सम्पादक का कहना है कि 'आभास' को मेरी लेखनी चलाती है, किन्तु मेरा विचार यह है कि 'आभास' ने मुझे चला रखा है।"

"ऐसी बात नहीं, कि दूसरे पत्रों को मैंने रचनायें नहीं भेजीं। भेजीं अवश्य परन्तु उनके साथ सम्पादक महोदय का 'सखेद' अथवा 'सधन्यवाद' का पुर्जा जुड़ा हुआ पत्र लौट आया। ठीक भी है मेरा नाम हुआ नहीं। मैंने स्वतन्त्रता-संग्राम में नेतागीरी नहीं की। नेताओं की तारीफों के पुल नहीं बाँधे। सभी सम्पादकों से अपने निकट के सम्बन्ध भी स्थिर नहीं कर पाया, फिर मेरी रचनायें सभी समाचार पत्रों में कैसे छपें ? कुछ सम्पादकों से मिला भी——उन्होंने कहा 'आपकी रचना अच्छी होती है, किन्तु चूँकि आप नए कवि हैं, अतः अगर हम आपकी रचनायें छाप दें तो जो महारथी-दिग्गज साहित्यकार हैं वे हमारी पत्र-

पत्रिकाओं से असहयोग कर देंगे। हम उन्हें नहीं छोड़ सकते क्योंकि उनकी पहुँच बहुत ऊँची होती है, जो कि एक पत्रकार के लिए कभी भी बेशकीमत सिद्ध हो सकती है।"

"उसके पश्चात् मैंने कभी भी न तो किसी अन्य पत्र-पत्रिका को अपनी रचनायें भेजीं--और न वे प्रकाशित ही हुईं बल्कि 'आभास' में छपी हुई रचनाओं पर भी आचार्यों की सद्-समालोचना के विपरीत यही चर्चा सुनी कि--सनक है--पता नहीं 'आभास' वाले क्यों छापते हैं ? अभी नाक पोंछने का ढंग आता है नहीं--चले हैं साहित्य-साधना करने ?" उनकी वागेश्वरी से कुछ कहा नहीं जा सकता ! लेकिन इन आचार्यों की अमूल्य चर्चा ने हमारी लेखनी का पौरुष जगा दिया है, अतः उसकी गति बढ़ रही है--ऐसा मेरा विश्वास है। आगे आप पढ़ते ही होंगे ?"

एक तो 'कुटिल जी' की 'करुण कथा' तिस पर उनके प्रति वर्तमान अन्याय, इन दोनों बातों ने मुझे प्रभावित किया। मैंने एक पहुँचे हुए योगी की भाँति उनके सामने तो गीता का--"कर्मण्येवाधिकारस्ते···" कह दिया, किन्तु मन में सोचने लगा, कि इस देश में एक वह स्व० महावीर प्रसाद द्विवेदी भी आचार्य थे, जिन्होंने बलपूर्वक लोगों को हिन्दी का पाठक ही नहीं अपितु लेखक तक बनाया, आज उन्हीं के निर्देशन में फलने-फूलने वाले साहित्यकार अपने दुर्गम-व्यूह में किसी को घुसने नहीं देना चाहते ? क्या यह 'राष्ट्रभाषा' की भक्ति है अथवा उससे द्रोह ?

एक कवि को एक कवि इसलिए आगे नहीं बढ़ने देना चाहता, कि कहीं कल को मेरी कल की रचना से चढ़ कर कोई रचना सरस्वती माँ के चरणों में न चढ़ादे ?

कहाँ स्वार्थ और दम्भ ? कहाँ साहित्य-साधना ? किन्तु बलिहारी है समय की। सभी कुछ ठीक है। अभी मैं इन विचारों को सोच ही रहा था, कि मथुरा-स्टेशन आ गया। पंजाब मेल रुका। 'कुटिल जी'

बोले—अच्छा पाठक जी अगर जिन्दा रहे तो फिर मिलेंगे ? नमस्ते ! उत्तर में केवल मैं हाथ ही जोड़ सका। वाणीचक्र छिछिया गया था। बोल न सका। मुझे ग्वालियर जाना था। पंजाबमेल चल दिया। मैंने सोचा साहित्यकार और कलाकार भी अगर अपने जीने में शंका करने लगा है तो देश का क्या होगा ? मेरे सामने गांधी जी और गुरुदेव, रवीन्द्र कवीन्द्र के चित्र आ गए। उनके जीवन के बलिदान और त्याग ! उनके आशा भरे राम राज्य के स्वप्न ! उनके सुखी-सम्पन्न भारत का स्वरूप क्या आज की परिस्थितियों में साहित्यकार सजीव कर सकेगा ? वास्तविक समाज की दशा को आज का साहित्य प्रतिबिम्ब बनकर जगत के सामने रखने में समर्थ होगा ? नेहरू जी की पंचशीला विश्व शान्ति के प्रचार-प्रसार में आज का साहित्यकार कैसे योग देगा ? जबकि प्रमुख पत्र-पत्रिकायें कुछ एक गिने चुने लोगों के ही लिए हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा था, कि "देश के हर नागरिक को साहित्य निर्माण में योग देना चाहिए। जो नहीं देता वह देश द्रोही, राष्ट्रद्रोही किंवा आत्मद्रोही भी है।"

मैं इन्हीं विचार वीथियों में भटक रहा था, कि आगरा स्टेशन आ गया। मेल रुका। स्टेशन पर एक मित्र खड़े थे उन्होंने मुझे जबरदस्ती उतार लिया।

इस घटना को हुए लगभग तीन मास हुए। 'आभास' का प्रकाशन बन्द हुआ क्यों ? कारण अज्ञात है। स्वाभाविक ही था। 'कुटिल जी' की रचनाओं का प्रकाशन भी बन्द हो गया। उनका पत्र आता है। बिचारे रुग्ण हैं। उनका रोग क्या है ? न आपसे छिपा है, न मुझ से ! मैं तो कुछ कर सकता नहीं। अगर आप कुछ कर सकें तो अवश्य करें। हाँ अगर आप कुछ करने लगें और आप यह समझते हों कि मैं कुछ कर सकता हूँ, तो निस्संकोच लिखें, मैं तब तन-मन-धन से आपका साथ दूंगा।"

---

# वर वरण

बुद्धम् शरणम् गच्छामि !
संधम् शरणम् गच्छामि !!
धर्म्मम् शरणम् गच्छामि !!!

आकाश की भाँति यह ध्वनि असीम तो हो उठी थी, किन्तु ससीम अभी भी संशयालु बना हुआ था। समस्त भारत में ऐसा कोई नगर या गाँव नहीं बचा था जहाँ इस ध्वनि के साथ बुद्ध सन्देश न पहुँचा हो ? कुछ ऐसा आकर्षण था इस ध्वनि-सन्देश में कि युवा-युवक भिक्षु-संघों की ओर खिचे चले आ रहे थे।

मथुरा के पूर्वी तट पर यमुना माँ का श्याम जल हिलोरित हो रहा था। सायं-प्रातः मन्दिरों के शङ्खनाद अपने साथ उक्त ध्वनि भी संजो चुके थे। कृष्णा माली की कन्या थी। श्याम वर्ण, किशोरी का गठा हुआ शरीर, ओजपूर्ण चन्द्र-मुख, यौवन की गरिमा से थिरकता हुआ वक्ष—तिस पर बगल में पुष्प-वंश-मंजूषा–लगती थी मानो आज रति मालिन बन कर भगवान शिव से अपने पति का कल्याण माँगने आई है।

कृष्णा को छींट का लहंगा और लाल चनर बहुत फबती थी। हाथों में चांदी के स्थूल किन्तु सुघड़ कडूले अनूठी आभा के प्रतीक हो उठते थे। और फिर क्यों न हो ? यौवन की व्याख्या इन्हीं सब में तो है। कृष्णा श्रीवन के माली की लाड़ली बेटी थी। भगवान का दिया हुआ उसके यहाँ सब कुछ था अगर कुछ कमी थी तो बस एक ही। श्रीवन का माली कृष्णा के जीवन में १८ बार बसन्त की पीत प्रभा अवलोक चुका था, किन्तु राधा के कन्हैया नहीं खोज सका। उसकी यह भी इच्छा थी कि कृष्णा स्वयं वर प्राप्त करे।

समय बीत रहा था। कृष्णा के संयोग के क्षण तो फिर भी न आ पाते थे । एक दिन कृष्णा भगवान अर्ध-नारीश्वर शिव शंकर पर अपनी सुन्दर कृति अर्पण करने गई तो द्वार पर कुछ पीत-वस्त्र-धारी सन्यासियों की भाँति सिर मुँडाये हुए—बुद्धम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि, की रटना में लीन बौद्ध भिक्षु देखे।

कृष्णा आज अपूर्व सी वेकली अनुभव कर उठी। भोले भण्डारी से कुछ माँगा, लेकिन अश्रु अर्घ्य प्रदान करके,—वाणी रुद्ध थी। शिव-लिंग की मुद्रा में कल्याण प्रतिभासित हुआ, कृष्णा घर की ओर चल पड़ी पर पाँव फूल गए थे। पीछे की ओर लौटा ले जाना चाहते थे। बहुत सोच विचार के पश्चात कृष्णा लौट ही तो पड़ी।

बौद्ध भिक्षु अपनी आनन्द ध्वनि में लीन थे। उन्हें किसी के आने और किसी के जाने की कोई आहट नहीं मिली थी। कृष्णा कुछ देर तो मन्त्र मुग्ध सी खड़ी रही—लेकिन थकान तथा निकटता—प्राप्ति-हेतु आखिर वहीं बैठ गई। कृष्णा सायंकाल के पुष्प अर्पणार्थ आई थी। वैठे वैठे रात भीग चली। दीप दान आरम्भ हुआ। आगत बौद्ध भिक्षु भी माँ यमुना की उस अद्‌भुत शृंगार छटा से झंकृत हो उठे और अनायास ही उनके मुख से 'सुन्दर, अति सुन्दर' की ध्वनि निकल गई। कृष्णा को बल मिला—मौन ने मान के संकोच के बन्धन ढीले किए, मुखरता आ बिराजी उसके मधुमय अधरों पर।

मदिर वंशी की ध्वनि में कृष्णा ने उस भिक्षु समुदाय से आतिथ्य ग्रहण करने का आग्रह किया। थेर भिक्षु मुस्काए—तथागत की जैसी इच्छा। और कृष्णा की चिर परिचित राह भी झंकृत हो उठी आज बुद्धम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि, धम्मम् शरणम् गच्छामि की तथागत अर्चना से। योग आज का कुछ अनोखा था। बौद्ध समझ रहे थे, वे अम्बपाली के अवतार का आतिथ्य पाने जा रहे हैं। कृष्णा समझ रही थीं, साक्षात् भगवान शिव के पूजक सन्त आज श्रीवन की कुटिया पवित्र करने पधार रहे हैं।

"जाकी रही भावना जैसी···

श्रीवन-श्रीवन ही था। मथुरा के सभी देव स्थान यहाँ के पत्र पुष्प पाकर धन्य होते थे। आज उस तीर्थों के तीर्थ में तथागतानुयाई आ गए। श्रीवन का श्री ने जी भर स्वागत सत्कार किया। कृष्णा के पिता संत सेवी थे। उन्हें भी कृष्णा के इस समारोह से असीम शान्ति मिली। भोजनोपरान्त सत्संग लगा। कुटिया एक बार फिर तथागत अर्चना से गूँज उठी।

कृष्णा का हृदय जाग उठा। और भिक्षु से हाथ जोड़ कर विनम्र वंशीध्वनि में निवेदन किया—"पिता तुल्य साधो आपने सन्यास लिया—आयु के अनुसार भला लगता है, किन्तु आपके साथ ये अन्य आठ युवक भी चल पड़े, इसका तात्पर्य क्या है कुछ समझाइए।"

थेर भिक्षु मुस्करा पड़े। बोले "यह भी तो कहो कि ये कर्म विमुख हो गये। इन्होंने संसार से पलायन किया—ढोंग दबाने के बहाने ढोंग खड़ा किया। किन्तु बेटी थोड़ा विचारो। आज धर्म के नाम पर क्या कुछ नहीं होता, किन्तु इतने कितने प्राणी हैं जो धर्म का कार्य भी जानते हैं। तुम हमें यहाँ क्यों लाईं ? केवल इसीलिए कि तुम्हारे मन में एक द्वन्द्व मचा हुआ है। मानवता को आश्रय चाहिए। वही तो तुम ढूंढ रही हो। किन्तु भूलो नहीं मानवता का आश्रय मानव के पास है। आवश्यकता है उसके आपाद-मस्तिष्क-परिष्कार की। इस परिष्कार के लिए—इस आत्म शुद्धि के लिए ही भगवान तथागत ने गृहत्याग किया। किन्तु 'गृह' की सीमा भी मानवता के साथ आंकनी होगी।"

कृष्णा बीच ही में बोल उठी "भन्ते ! किन्तु इस सबका सम्बन्ध मेरे प्रश्न से कैसे जोड़ा"?

थेर भिक्षु फिर मुस्कराए—'कुमारिका ! हममें तुममें अन्तर तो है नहीं किन्तु तुम मानती हो ! भगवान शिव और भगवान तथागत में

अन्तर नहीं है, किन्तु सम्प्रदायवादी मानते हैं। मानने का सम्बन्ध संस्कारों से है। ये तरुण भिक्षु केवल वासना विलास के ही लिए संसार में आए हैं ऐसी बात नहीं—इनके कर्तव्य ने इनके साथ ही जन्म लिया है। वेदों का सन्देश पिटकों से भिन्न नहीं है। भिन्नता देखना हमारा दृष्टि-दोष है। आर्य-आश्रम-व्यवस्थानुसार २५ वर्ष तक की आयु गुरुकुल के लिए मानी गई है। ये भिक्षु मेरे शिष्य हैं, किन्तु इन्हें मैं संसार से दूर वनों में शिक्षा नहीं देता। अपितु तुम्हारे जैसे गृहस्थियों के बीच इन्हें स्वयम्—समझने विचार के अवसर जुटाता रहता हूँ।"

कृष्णा की शंका वहीं लहरा रही थी—

"नाथ! यदि यही बात सत्य है तो इन्होंने आप जैसे पीत वस्त्र धारण क्यों किए हैं?

प्रसन्न मुख से शान्ति गंगा बहाते हुए थेर भिक्षु बोले! "शिक्षा काल विचित्र समय होता है। उसमें अनाशक्ति की परम आवश्यकता होती है। इसके लिए व्रत धारण करने आवश्यक होते हैं फिर गुरु के साथ गुरु का प्रभाव भी रहता है। एकरूपता अनुशासन का प्रतीक भी है।"

प्रश्न हुआ—'फिर विद्यार्थियों को भिक्षु क्यों कहा जाता है? भिक्षु कौन नहीं है?'

उसी सौम्यता से उत्तर देते हुए थेर भिक्षु बोले, "विद्यार्थी शब्द का अर्थ है विद्या प्राप्ति करने हारा। कहाँ से?—गुरु से। गुरु की इच्छा है दान करे न करे। तो विद्यार्थी भिक्षु हुआ कि नहीं! आज जो कुछ आडम्बर फैला वह इसीलिए क्योंकि विद्यार्थियों में यह अहम् घर कर गया कि विद्या हमने उपार्जित की है माँगी नहीं। किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है।"

"प्रभो! मुझे भी अपने गुरुकुल में ले चलो। मुझे भी भिक्षुणी की दीक्षा दो।"

"तुम भूलती हो कुमारिके ! तुमने जो कुछ माँगना था भगवान शिव के मन्दिर में ही माँग लिया था—उस भिक्षा का निमित्त मुझे बनना था, मैं बना। संसार में कोई ऐसा नहीं जो यह छाती पर हाथ धर के कह सके कि मैं किसी से कुछ नहीं माँगता। धर्म नीति, राज-नीति, समाजनीति तथा अर्थ नीति ने अपनी अपनी भिक्षा की आकर्षक तड़कीली-भड़कीली परोक्ष रीतियाँ बना ली हैं। इन्हीं रीतियों की रक्षा के लिए झगड़े-टण्टे, बड़े-बड़े युद्धों का सूत्रपात होता है। दीक्षा तुम्हें मिल चुकी है, अपना कर्तव्य सम्हालो। जितना हो सके 'मानवता'—दूसरे शब्दों में धर्म जिसे कह सकती हो—अपने निकट लाओ धर्म के साथ शील-सत्य अपने आप आयेंगे और आएगी उन सबकी पोषक अहिंसा। और यही सब मिलकर शिव बनते हैं।

कृष्णा नाच उठी। अपने बूढ़े पिता की गोद में झूल गई—"बापू ! मेरे प्यारे बापू ! मेरा पति मिल गया मुझे बापू ! कल्याण ! शिव ! ज्ञान ! एक ही पति के विभिन्न रूप सत्यम् शिवम् सुन्दरम्।" कृष्णा के जीवन ने जन सेवा का व्रत धारण कर लिया।

और बौद्ध भिक्षु समुदाय उसी शान्तिदाता ध्वनि को गाता हुआ धीरे धीरे श्रीवन से बाहर हो गया, किन्तु श्रीवन के पेड़-पौधे, पुष्प क्यारियां गा रही थीं—बुद्धम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि, धर्म्मम् शरणम् गच्छामि।

---

# श्री कार्तिक चन्द्र दत्त



आपका जन्म १६३० में हुआ और एम. ए. तक शिक्षा देहरादून में ही पाई। बाल्यकाल से ही आप की रुचि साहित्य की ओर थी। आपको बंगला भाषा में भी रुचि है।

श्री कार्तिक चन्द्र दत्त कुछ समय तक देहरादून से निकलने वाले त्रैमासिक "साहित्य" के सम्पादक-मण्डल में भी रहे हैं। अतः जहाँ पर आपकी साहित्य में रुचि है वहां पर साहित्य-सृजन का ठोस अनुभव भी है।

आपके लेख तथा कहानियां अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। कहानी-जगत में आप पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त कर चुके हैं। आपकी कहानियों में समाज के अभिशापों का गहन चित्रण, रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज और विद्रोह होता है।

# प्रेत और छाया

जाड़े की एक भीगी शाम। दोपहर के बाद से ही बादल घिर आये थे और शाम होते होते हल्की फुवार पड़ने लगी थी। दिन ने भी और दिनों की अपेक्षा कुछ जल्दी ही अपने को काली ओढ़नी में छिपा लिया था। ऐसी ठण्डी काली शाम शायद इससे पहले मैंने नहीं देखी थी। एक अजीब सी मायूसी उस शाम में भरी हुई थी। सारा वातावरण एक अजीब किस्म के मैलेपन और धुंधलेपन से बोझिल था, धीरे धीरे बारिश तेज होती गई। बिजली का चमकना भी बढ़ गया। सारी फ़िज़ा पानी से भीगी हुई थी। कमरे में बैठे बैठे मुझे ऐसा लग रहा था मानों में भी भीग गया हूँ।

भला यह भी कोई बात है कि सरे शाम कोई चुपचाप कमरे में बैठा रहे! करे भी तो, आखिर क्या करे? किताबें कोई कब तक पढ़ सकता है? और जब कि मेरे पास कोई अच्छी किताब भी नहीं है। और पड़े-पड़े कब तक अपनी बेकारी की हालत पर सोचा जा सकता है? आखिर कब तक?

हाँ, तो, बारिश की बूँदें जरा कम हो गई थीं। लेकिन रात इधर काफी बढ़ गई थी। फिर भी, मैंने अपना गरम फटा हुआ कोट उठा लिया, फटे हुए मोजों में पैर डाल कर, जूतों के फीते बांधते हुए मैंने सोचा,—चलो थोड़ी देर हवा फाँक आयें; दिमाग़ भी ठण्डा होगा और दिल भी, और इधर यदि बूँदें तेज हो गयीं तो कपड़े भी ठण्डे हो जायेंगे। माँ ने आश्चर्य प्रकट किया कि ऐसी ठण्ड में मैं क्यों कर बाहर निकल रहा हूँ। वे आजकल अक्सर मेरी बातों पर आश्चर्य प्रकट किया करती हैं। दरवाजे से बाहर पैर रखते ही तबियत हरी हो गई। गली वैसे ही कौनसी साफ रहती है—सो बारिश की मेहरबानी से,

किनारे-किनारे के कूड़े के ढेर अब बीच गली में अपना स्थान बनाये थे। पायजामा सम्भाल कर आगे बढ़ा।

फुटपाथ पर धीरे धीरे चलने लगा। बारिश तब भी बिल्कुल बन्द नहीं हुई थी, और हल्की हल्की फुआर पड़ रही थी। दुकानें करीब करीब सब बन्द थीं, सड़क खाली; सिर्फ कभी कभी एक-आध रिक्शा टिन-टिनाता हुआ निकल जाता था। एक कार तेज गति से छींटे उड़ाती हुई निकल गई। दूर एक काली सी मूर्ति भीगती हुई चली जा रही है। हिवेट रोड के पहले चौराहे से निकल कर मैं आगे बढ़ने लगा। सारे वातावरण पर हल्के धुयें का परदा फैला हुआ है; परदे ने सारे शहर को अपने में लपेट रक्खा है। धुएँ से आँखों में जलन हो रही थी। साँस में घुटन थी और मेरा दिमाग जल रहा था।

दिन भर घर में बैठे-बैठे फ़िज़ूल की चिन्ता से दिमाग़ में जो जलन पैदा हो गई थी उसे जाड़े की ठण्डी फुआर भी न बुझा सकी। इसी से मेरे दिमाग पर एक बोझा सा था। और उसे हल्का करने के लिए मैंने सोचा, चलो सिगरेट पी जाये। वैसे मैं सिगरट नहीं पीता। लेकिन मैंने सोचा, आज सिगरेट पी जायेगी, धुएँ के इस वातावरण को और भी धूमिल कर देना ही अच्छा है।

'छप'—मेरे कदम छप से पानी में पड़ गये। मैं कुछ बहक-सा गया था—लेकिन, इधर पानी जूते के भीतर बेमालूम दाखिल हो गया था। पैर झाड़कर जब मैं चलने लगा तो जूतों के वज़न में काफ़ी फ़र्क़ आ गया था।

पान की दुकान पर सिगरेट फूँकते फूँकते रेडियो सुनने लगा। एक फिल्मी गीत चल रहा था, गीत सुन्दर था। मुझे आनन्द आ रहा था, लेकिन ऐन मौके पर सिगरेट ने अपना करतब दिखाया, धुएँ ने दिमाग पर असर किया। सिर चकराने लगा। झुंझलाकर मैंने सिगरेट फेंक दिया। झुंझलाहट का एक कारण यह भी था कि क्योंकर मैंने दो पैसे

इस तरह बरबाद किए। दो पैसे ! जिस आदमी की जेब में सिर्फ एक दुअन्नी हो और जिस दुअन्नी पर सारा शाम की खुशी, आनन्द, हँसी, क़हक़हों की जिम्मेदारी हो, उस दुअन्नी में से दो पैसे यों ही निकल जाना कोई मजाक नहीं था।

मैं बढ़ता चला जा रहा था, सड़क के किनारे किनारे चला जा रहा था—हल्की फुआर में भीगता हुआ। फुटपाथ पर चलना दुश्वार था, विशेषत: फुटपाथ के उन हिस्सों से जो आलीशान मकानों के छज्जों के नीचे से गुजरते थे—और भी दुश्वार था। क्योंकि डर था कि कहीं किसी आदमी, औरत, बच्चों को न कुचल दूँ। किसी जानवर पर न जा गिरूँ। हाँ इसी बात का डर था। इसी से फुटपाथ को छोड़ कर खुली खाली सड़क पर चला जा रहा था। तो यह सोच कर मुझे बिल्कुल आश्चर्य नहीं हुआ कि हमारी शहरी जनता का एक हिस्सा फुट-पाथ पर रहता है। जाड़े, गर्मी, बरसात सब में—फुट पाथ ही उसका घर है। कि आजकल भी जब लोग सुबह गरम बिस्तरों में पड़े पड़े अख़बार में तापक्रम को पढ़ कर चौंक उठते हैं—रजाई को जरा और खींच लेते हैं नाक तक–ऐसी ठंड तो इलाहाबाद में······।

मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। मैं चिन्ताओं की भीड़ में खो गया था। न जाने कहाँ जा रहा था ? सड़क, गलियाँ, टेढ़ी-मेढ़ी, सीधी और मैं चला चला जा रहा था। जिस जगह पहुँचा, सो परिचित जगह है। संकरी गली के भीतर एक चाय की दुकान। यह दुकान शहर के उस हिस्से में है, जहाँ आदमियों की, मकानों की, सबसे ज्यादा भीड़ है। लेकिन आप में से बहुतों को शायद मालूम नहीं कि यहाँ भी चाय की एक दुकान है और इस दुकान की चाय इतनी अच्छी बनती है कि आप जो शहर के अभिजात्य होटल, कॉफे के भक्त हैं, यहाँ की चाय का आनन्द नहीं उठा सकते। क्योंकि यहाँ की चाय सिर्फ चाय नहीं······।

"एक चा ऽ ऽ य आठ नम्बर"—मैं आठ नम्बर कुर्सी पर आसीन था। इस दुकान की विशेषता यह है कि प्रत्येक कुर्सी के पीछे दीवार पर नम्बर लगे हैं, और ग्राहक कुर्सी पर आकर बैठा नहीं कि······। दुकानदार मुझे पहचानता है और वह यह भी जानता है कि मैं सिर्फ चाय पीता हूँ। शायद शक्ल देखकर पहचान जाता होगा।

दुकान में काफी भीड़ भाड़ थी। पिछले कोने पर पाँच छः आदमियों का जमघट था। जमघट और दुकान के बीच में एक हल्के रंग का मैला परदा लटका हुआ है। बाईं ओर कुछ केबिन बने हुए हैं। वहाँ भी लोग बैठे हुए हैं—चाय पी रहे हैं ? नहीं ! ऐसी ठंडी शाम को सिर्फ चाय पीना व्यर्थ है। मैं जानता हूँ कि वे क्या कर रहे हैं, पिछले कोने में एक के दस बनाये जा रहे हैं, और दांई ओर—दिल को गीली आग से जलाया जा रहा है। आधी रात के बाद तक यहाँ यों ही चलता रहेगा।

मैंने अचानक गौर किया कि मेरे ठीक सामने, एक आदमी, जो बैठा हुआ चाय पी रहा है, मुझे घूर रहा है। मुझे कुछ अनमना सा लगा। मेरे नजर उठाते ही उसने अपनी नजर नीची कर ली, वह दूसरी ओर देखने लगा। एक बार, दो बार, तीन बार······! आखिर बात क्या है ?

लेकिन मेरे कुछ पूछने से पहले ही वह उठ खड़ा हुआ। काउण्टर पर जाकर उसने हिसाब चुकता किया और खट-खट करता हुआ दुकान से बाहर निकल गया। मैंने शान्ति की साँस ली।

और मैं भी दुकान से बाहर निकल गया। अब मैं कहां जाऊँ ! घर ? घर तो अपना है ही, वहाँ तो आखिर जाना ही है। लेकिन इस वक्त कहाँ जाया जाये ? मैं जानता हूँ कि इतनी जल्दी घर जाना व्यर्थ होगा ; ऐसी रोमांटिक रात बिस्तर पर पड़े पड़े खराब कर देना अनुचित है। इससे अच्छा सड़कों को नापो। देखो कि भीगी हुई खाली

सड़क पर बिजली की रोशनी कैसा खेल दिखा रही है। कि कुहरे और धुएँ का यह जाल कैसा रहस्यपूर्ण वातावरण पैदा कर रहा है। कि दूर तक यह खाली सड़क और आलीशान बन्द मकानों और दुकानों की यह भीड़—मानो किसी स्वप्न राज्य में पहुँच गया हूँ, जहाँ सिर्फ आलीशान मकान हैं—दुकान हैं—धन-दौलत है लेकिन इन्सान कहीं नजर नहीं आता। और ऐसे स्वप्न राज्य में मैं अकेला, एक छत्र राजा की तरह घूम रहा हूँ—बस मैं जाग रहा हूँ···और सारी दुनिया सो रही है।

—माफ़ कीजियेगा······।

मैं चौंक उठा। स्वप्न-राज्य से धरती पर उतर आया। मेरे सामने एक आदमी खड़ा था।

—आप घूमने जाइयेगा ?

मैंने उस आदमी को गौर से देखने की कोशिश की। चेहरा साफ नहीं दीख रहा था फिर भी कुछ लम्बापन लिए हुए-सा था और सिर पर बालों का झाड़। उसका सारा शरीर एक लम्बे काले कोट से ढका हुआ था।

—आपका मतलब ! मैंने आश्चर्य से पूछा।

वह अचानक बहुत नम्र हो गया। बोला—कुछ नहीं साहब······ हमारा मतलब है······आप सैर करेगा······बहुत बढ़िया······।

मैंने बात काटते हुए कहा—समझ गया। मेरे कदम तेज़ पड़ने लगे। शरीर अचानक गर्म हो उठा। वह आदमी भी मेरे साथ छाया की तरह चला आ रहा था।

—साहब हमको सिर्फ एक रुपया दे देना। बस···बहुत सस्ता···।

मैं चुप रहा। क्योंकि मेरी जबान ने चलने से इन्कार कर दिया था। लेकिन मेरे कदम चल रहे थे ; तेजी से चल रहे थे। मैंने अपने दोनों

हाथ कोट की जेब में डाल रक्खे थे। मेरा सिर काफी झुक-सा गया था। और वह आदमी मेरे पीछे-पीछे चला आ रहा था। एक काली छाया की तरह।

—साहब सिगरेट। उसने एक सिगरेट निकाल कर मेरी ओर बढ़ाया। मैंने सिर हिला दिया। मैं चला जा रहा था। मुझे पता नहीं किस ओर जा रहा था। बस, मैं चला जा रहा था, सड़कें पार कर रहा था, गलियाँ पार कर रहा था, बन्द दुकानें, आलीशान मकानों की पंक्तियाँ, लैम्प-पोस्ट, मैल के बदबूदार डोल, गन्दी नालियों की सड़ाध—सब पार कर रहा था। लेकिन थोड़ी देर बाद मैंने गौर किया कि वह आदमी मेरे साथ नहीं था बल्कि मैं उसके साथ चला जा रहा था, छाया की तरह।

—एक मिनट रुकिये। छाया ने कहा और वह चला गया। दीवारों की काली गीली भीड़ में घुस गया, मैं अकेला रह गया। मेरे क़दम ठिठक गये। मैंने चारों ओर देखा, मैं यह कहाँ आ गया हूँ ? मैं एक संकरी गली के बीच में खड़ा था। ऊपर आसमान काला था। और तीन-चार मंजिल मकानों की दीवारें मुझे घेरे खड़ी थीं। मैं बन्दी था। मैं यह कहाँ आ गया हूँ ? यह कौनसा शहर है ?

दो आदमी मुझको करीब धकेल कर ही निकल गये। शराब की भभक से मेरा सिर भन्ना उठा। पास ही कहीं से चीखने की आवाज आ रही थी, कोई गालियों की बौछार कर रहा था। एक ओर से हारमोनियम पर फिल्मी गीत की कड़ियाँ उड़ती आ रही थीं—"पंछी बावरा, चाँद से प्रीत लगाये"।

—नहीं···नहीं नहीं मुझे माफ़ करो मैं···।" मैं जहाँ खड़ा था वहीं किसी काल कोठरी से आवाज गूँज उठी। मैं काँप गया।

—मैं कहती हूँ आज मुझसे कुछ न होगा···। औरत की कर्कश किन्तु करुण आवाज़ थी।

—साली···हरामजादी इसी तरह बीमारी का बहाना बनाती रहेगी तो खायेंगे क्या··· ?" मार-पीट गाली-गलौच। अचानक चुप्पी छा गई। फिर दूसरी ओर से हारमोनियम की आवाज़ के साथ कर्कश गले का गीत सुनाई देने लगा।

—चलो साहब। वही आदमी न जाने कहाँ से आ टपका।

—कहाँ ? मेरे मुख से निकल ही गया।

—हमारे साथ आइये। लेकिन मुझको एक रुपया पहले······।

अचानक मेरे दिमाग़ में आग लग गई, मेरे कान गर्म होकर लाल हो गये। वह शायद मेरी ओर घूर रहा था, लेकिन मैं उसका चेहरा नहीं देख पा रहा था। मेरी आँखों के आगे धुन्ध छा गयी।

—इधर दायीं ओर······।

इतने में न जाने क्या हुआ कि मुझको जाड़ा लगने लगा। मैं काँपने लगा। यहाँ मैं कहाँ आ गया हूँ, कैसे, क्यों ? मैंने उस आदमी की ओर गौर से देखने की कोशिश की······और क्या हुआ कि मैं एक दम पीछे घूम कर दौड़ने लगा। तेज़ी से। मुझमें जितनी ताकत हो सकती थी···मैं भागने लगा और मेरे पीछे वह काली छाया भी भागने लगी, और मैं शायद चीखता जा रहा था—मैंने तुमको धोखा दिया है, मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। और मैं भाग रहा था। कीचड़ और पानी से भरी हुई सड़क पर छप-छप की आवाज़ उठ रही थी। मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरे पैर भारी हो गये हों, मैं भाग नहीं सकूंगा और वह काली छाया मुझको पकड़ लेगी।

—रुको। न जाने कब तक भागता रहा था कि एक तेज कड़कती आवाज से मैं ठिठक गया और अनजाने में ही काँप उठा। एक काली छाया मेरी ओर तेजी से बढ़ती चली आ रही थी।

मेरे सामने एक पुलिस का सिपाही खड़ा था। रात को ड्यूटी पर होगा।

—क्यों भागते हो ? उसने मेरा ओर सन्देहपूर्ण नज़रों से देखते हुए कड़क कर पूछा। मैं काँप रहा था। मेरी ज़बान पर ताला पड़ गया था।

—बोलता क्यों नहीं ? वह मुझे घूर रहा था। मैंने उसे बताया कि मैं आ रहा था अचानक मैंने एक काला भूत देखा, मैं डर गया··· मैंने भागना शुरू किया और वह काला भूत मेरे पीछे पीछे भागता चला आ रहा है। मैंने उसे बताया कि वह काला भूत इन सब आलीशान मकानों-दुकानों के पीछे, इन की शान-शौकत और ऐश्वर्य के पीछे, आनन्द और क़हक़हों के पीछे ज़रूर कहीं छिपा हुआ है और मुझे अकेला पाते ही दबोच लेगा······।

लेकिन अचानक मेरे दिमाग़ में एक रोशनी कौंध गई और मैं सोच रहा था—इस तरह मैं कब तक भागूँगा ? ···कहाँ तक भागूँगा ?

पुलिस वाला हँसने लगा, बोला—जवान आदमी होकर डरता है ?

मैंने कहा—डरता हूँ, इसी से मैं भाग रहा हूँ।

मैंने फिर भागना शुरू किया। लेकिन अब मेरे कदम व्यवस्थित पड़ रहे थे। मेरे हृदय का भय दूर होता जा रहा था। अचानक मैं रुक गया, घम कर खड़ा हो गया, भूत का मुकाबला करने।

---

# मरीचिका

देहरा-दिल्ली एक्सप्रेस अन्धकार को चीरती हुई तेज़ी से चली जा रही थी। पथ के दोनों ओर काली अंधियारी है और बीच बीच में एक दो रोशनी तेज़ी से पीछे निकली जा रही थी; एक अजीब सूनापन, सिर्फ अन्दर कमरों में जीवन है और रोशनी है, और बाहर कुछ जंगली कीड़ों की भी···भी···गाड़ी की चाल के साथ ताल मिलाकर एक राग उत्पन्न कर रही थी, पीछे दूर सिगनल की लाल-हरी रोशनी दिखाई दे रही थी जो धीरे-धीरे अन्धकार की गोद में समा गई, धीरे-धीरे एक काले आवरण ने सब कुछ ढ़क लिया। चारों तरफ अन्धकार है; दृष्टि कुछ दूर जाकर स्वयं ही रुक जाती थी।

सेकण्ड क्लास का कमरा, एक आदमी चुपचाप खिड़की पर सिर रख कर आँख बन्द किये बैठा है, बिलकुल निःसंग, कमरा बिलकुल खाली; एक मासिक पत्रिका भी पड़ी हुई है लेकिन उसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं। आदमी की उम्र कोई ४०-४५ के आस पास की होगी, लम्बा चौड़ा सुगठित शरीर, चेहरा कभी आकर्षक और सुन्दर रहा होगा लेकिन देखने से मालूम होता है जैसे बुढ़ापा आ गया हो, आँखों की गहराइयों में गहरी कालिस जमी हुई थी, फिर भी एक बीता हुआ यौवन आसानी से आँका जा सकता है। इस समय चेहरे पर एक अजीब प्रशान्ति है, तूफान के बाद की अवस्था—जैसे एक तूफान कभी इस पर से गुजरा हो।

राजेन बाबू मसूरी से लौट रहे हैं, शायद हमेशा के लिए, जीवन में और कभी नहीं जाना पड़ेगा। पिछले पाँच वर्षों में मसूरी का उनके जीवन के साथ विशेष सम्बन्ध रह चुका है, किन्तु जब वह तार टूट

चुका है जो कभी न जुड़ सकेगा—इसीलिए लौट रहे हैं। लेकिन उन्हें महसूस हो रहा था जैसे उन्हें किसी ने ऊँचे गिरि शिखर पर ले जाकर अचानक अतल गहराई में धकेल दिया हो और हृदय के टुकड़े टुकड़े हो गये, मानो उनके पास कुछ भी नहीं रहा—कुछ भी तो नहीं। एक क्षण में सब कुछ बेकार हो गया। मसूरी—वह रंगीन मादक आबो-हवा, वह नशा सब कुछ बेकार हो गया। मसूरी अब रेगिस्तान का एक टुकड़ा है जहाँ सिर्फ रेत और रेत है—जितना भी पानी डालो सूख जायेगा।

एक सूखी और गर्म हवा का झोंका कमरे में दाख़िल हुआ। गाड़ी जो एक छोटे से स्टेशन को छोड़ कर आई है, वीरान मैदानों से गुज़र रही थी।

अचानक राजेन बाबू ने सुना—

"मिली माई डार्लिंग······" और चुम्बन का एक मीठा सा कोमल शब्द।

आह ! —अनायास ही उनके मुँह से निकल आया, "कौन है ?" वे चौंके, उन्होंने आँखें खोलीं। कमरा बिलकुल खाली था। 'वह यहाँ कैसे हो सकती है ?' वह उठ खड़े हुए, अच्छीत रह कमरे में चारों ओर देखा 'नहीं कोई नहीं है'—उन्हें भ्रम हुआ था। कहाँ मसूरी······ और कहाँ······? उन्होंने बाहर अन्धकार में देखा।

गाड़ी तेजी से जंगल के बीच में से होकर गुज़र रही थी; अन्धकार यहाँ आकर पुंजीभूत हो गया है; दृष्टि बिलकुल नहीं चलती, ऊपर आसमान पर चलते हुए तारे हैं, गाड़ी की आवाज पेड़ों से टकरा कर साँय-साँय शब्द उत्पन्न कर रही है। उनके हृदय में एक कोमल, करुण सरसराहट उठी और वे बैठ गये।

चलचित्र की भाँति दृश्य बदलने लगे।

······दिल्ली के गर्म शहर में गर्मियाँ काटना कोई माने नहीं

रखता जबकि उनके पास साधन हैं। उन्होंने नक्शों पर नज़र दौड़ाई—दार्जिलिंग, नैनीताल, मसूरी, शिमला-हिमालय की ऊँची ऊँची बर्फीली चोटियाँ पुकार रही थीं, जैसे कह रही थीं 'आओ देखो तो यहाँ क्या कुछ है, इन तीर्थों पर सब कुछ मिल सकता है—तुम्हारे लिए होटल क्लब, रिन्क, सिनेमा सब कुछ है—और ऊँची ऊँची बर्फीली चोटियाँ हैं और अतल गहराई है।

× × × ×

मसूरी आये दो दिन हो गये। एक विशेष प्रकार की अनुभूति हुई। कहाँ झुलसती हुई गर्म लू और कहाँ मीठी-मीठी ठण्डी गर्मी। तन मन में चुस्ती थी, सहृदय मित्र, जिनके यहाँ ठहरे हुए थे, उनके साथ रोज़ सुबह शाम घूमने निकल जाना—एक मील—दो मील—और सुन्दर सुन्दर दृश्य···शाम को जगमगाता हुआ शहर—एक सुन्दर मीठा स्वप्न सा; फिर थक कर चूर चूर हो जाना, गहरी नींद और सुबह तक फिर बिलकुल ठीक, सीधे शब्दों में चंगा। सिर्फ एक मलाल दिल में रह गया—ऐसे में शीला साथ होती, उसे मैके न जाना पड़ता···।

लेकिन मित्र भी दिन में कार्यवश निकल जाता है और उन्हें अकेले ही रहना पड़ता है—क्या करे। लम्बी घड़ियाँ···लेकिन मसूरी में आकर कमरे में पड़ा रहना सरासर अन्याय है—

मित्र चला गया था, वह उठे, कपड़े पहने और चल दिए। सड़कों को पार करते हुए चले जा रहे थे—नीचे दूर तक फैला हुआ नीला आसमान, दूर देहरादून की सुरम्य घाटी और देहरादून का खिलौना सा शहर; मीठी-मीठी धूप और एक आकर्षक वातावरण—उन्हें आश्चर्यजनक अनुभूति हुई।

स्केटिंग हाल—चारों तरफ लोगों की भीड़ खड़ी है, नारी, पुरुष, बच्चे—विशेषतः युवक और युवतियाँ और वे भी एक विशेष समुदाय और वातावरण के रहने वाले। बीच में लकड़ी के बने हुए चिकने फर्श

पर युवक युवतियाँ और बच्चे घूम रहे थे। अजीब समा था। चतुर खिलाड़ियों की चाल में अजीब मादकता है—सरसराहट के साथ आगे बढ़ते हैं। कुछ नौसिखिये भी थे जिनकी कलाबाजी पर हँसी का फव्वारा छूट जाता था। तरुणी लड़कियाँ भी एक विशेष अन्दाज से हँसती, जो उन नौसिखियों को दस पाँच कलाबाजियाँ खिलाने पर मजबूर कर रही थीं, यहाँ तक कि उनके कपड़े और हाथ-पैर के गाँठों की मजबूती उस समय अनिश्चित अवस्था में हो जाती थी। चारों ओर एक मादक उच्छृंखल वातावरण था।

वह एक किनारे पर आकर खड़े हो गये और तमाशे को देखने लगे। एक बार इच्छा हुई कि मैदान में उतर आयें, लेकिन मजबूर थे—यह कला ही नहीं आती। धीरे-धीरे उनकी नजरें एकाग्र होती चली गईं। एक के बाद दूसरा चेहरा उनके सामने से गुजर रहा था—एक रंगीन जलूस! और वे देख रहे थे।

—और उन्होंने महसूस किया कि वे किसी व्यक्ति विशेष को देख रहे हैं और वह विशेष व्यक्तित्व—एक लड़की थी—एक अविकसित कली, वे चौंक उठे, उन्होंने अच्छी तरह देखा और फिर अपने अन्तर को टटोलना शुरू किया—क्या देख रहा हूँ। उन्होंने अच्छी तरह से सोचा—कोई कामना, वासना···प्रेम—लेकिन इस लड़की से। उसके—सारे व्यक्तित्व में क्या? वह क्या वस्तु है जो उन्हें इस प्रकार आकर्षित कर रही है? वह अच्छी क्यों लग रही है?

उनके हृदय में एक तूफान उठ खड़ा हुआ—उनकी आँखें फिर उसी चेहरे पर जा जमीं—एक मासूम चेहरा, कोमल कली की तरह, शारीरिक गठन में कोमल नये पत्ते की छाया, आँखों में नीले स्वच्छ आसमान का गहरा रहस्य, और पतले होंठ, मुस्कराहट और···एक रूमानी वातावरण—वे देखते रहे, एक टक देखते रहे। उनका हृदय एक अथाह समुद्र में खो गया। उन्होंने एक बार खिड़की से बाहर

देखा—नीचे दूर तक नीला आसमान फैला हुआ था।

जब उन्हें होश आया तो खेल समाप्त हो चुका था। एक बज गया है। सब अपने अपने घरों की ओर चल दिए। उन्हें ख्याल आया —'अभी तो मैंने खाना भी नहीं खाया है।'

रात को बिस्तर पर पड़े थे और दिन भर का दृश्य उनकी आँखों के सामने था। उनकी विचारधारा एक विचित्र गति से चल रही थी, उनका सारा मस्तिष्क घूमने सा लगा, उन्होंने सोचा 'कहाँ मैं, जो बुढ़ापे के दरवाजे पर पैर रखने वाला हूँ, और वह एक मामूली कली—जो शायद नारी और पुरुष के इस कोमल सम्बन्ध के बारे में पूर्णत: अचेतन है—उससे प्रेम !

उन्हें आश्चर्य हुआ। उनके हृदय की यह टीस उनके लिए एक समस्या बन गई। यह साधारण आकर्षण नहीं है—यह उससे सर्वथा भिन्न है—कुछ अधिक है; हृदय की भावना कुछ और कह रही है—जैसे कोई चिरन्तन राग हृदय के किसी कोने में बज उठा है—प्रेम है।

× × × ×

वह दिल्ली लौट आये लेकिन उन्होंने स्पष्टतः अनुभव किया जैसे कोई अमूल्य वस्तु उनसे छूट गई हो।

····सारा कमरा झूल सा रहा था—गाड़ी शायद कोई पुल पार कर रही थी, इसीलिए चाल कुछ धीमी है।

—फिर गर्मी का सीजन, फिर मसूरी, और इस बार भी वे अकेले ही आये। शीला आना चाहती थी—पर वे लाये नहीं।······और वही रिन्क, होटल, क्लब—और वही मासूम चेहरा···। उन्होंने पूरे दो महीने मसूरी में काट दिये। शीला की चिट्ठी आई 'तुम इतने दिन वहाँ क्या कर रहे हो······'? बाप का पत्र आया 'बिजनेस को इस तरह ढीला छोड़ने से काम नहीं चलेगा।'

लेकिन कोई चिन्ता नहीं, खुफिया पुलिस की तरह उसके पीछे पीछे घूमना—रिन्क, क्लब रेस्टुरैंट—जहाँ वह जाती, राजेन बाबू वहीं होते—लेकिन एक फासला हमेशा कायम रहा—दो समानान्तर रेखाओं की तरह।

उन्होंने सिर्फ देखा…दूर एक किनारे पर आकर बैठ जाते और देखते रहते। यहाँ तक कि नाम जानने की भी कोशिश नहीं की—क्या होगा नाम से ? फूल या कली ! नाम से क्या होगा ?

लेकिन वह मिल कैसे सकती है—उसका क्या होगा जिससे विवाह हो चुका है—शीला……यहाँ से दो सौ मील दूर दिल्ली की एक आलीशान कोठी में है—जो अभी युवती है…यौवन का रस…जीवन का आनन्द, सब कुछ है—लेकिन यह समस्या क्यों ?

प्रश्न सुलझ न सका और सीजन खत्म हो गया और एक दिन वह मासूम चेहरा न जाने कहाँ छिप गया—कुछ पता नहीं। और वे दिल्ली लौट आये।

…गाड़ी रुक गई, कोई स्टेशन है। शोर गुल, कुछ रोशनी, गर्म चाय……और गाड़ी फिर चल दी……फिर अन्धकार में एक काले रहस्यमय अन्धकार में ढकी हुई दुनियाँ गुजर रही थी, इस आवरण के पीछे न जाने क्या है—एक दृश्य सामने आता है और कोई रहस्यपूर्ण संकेत करता हुआ दूर चला जाता है—बहुत दूर।

इसी तरह एक, दो, तीन, लगातार पाँच साल बीत गये किन्तु प्रश्न सुलझ न सका। इस बार भी उनका मसूरी आना रुक न सका। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में उनके पारिवारिक जीवन में काफी परिवर्तन हो चुका है। वृद्ध बाप का देहान्त हो चुका है, बिजनेस का सारा बोझा उनके सिर पर आ गया है—दोनों बच्चे काफी बड़े हो गये हैं… और शीला अब उनके साथ कहीं जाने के लिये जिद नहीं करती…। लेकिन

फिर भी उन्हें मसूरी आना पड़ा। स्वयं ही खिंचे चले आये······ शीला, बच्चे, बिजनेस कोई भी रोक न सका।

अब की बार मसूरी में अनोखी रौनक थी। राजेन बाबू ने इससे पहले ऐसी रौनक कभी न देखी थी—और, वह भी आई थी।

किन्तु अब की बार उन्हें अपनी नजरों पर सन्देह होने लगा—क्या वही है? उसमें उन्हें एक अनोखा रूप दिखाई दे रहा था, उन्होंने सोचा, 'कहीं इस मरीचिका के पीछे पागल तो नहीं हो जाऊँगा? नहीं मरीचिका नहीं—वह मरीचिका नहीं हो सकती।

लेकिन उस दिन वह अकेली नहीं थी, एक सुन्दर युवक उसके साथ था। रिन्क की सीढ़ियाँ चढ़ते हुये युवक ने हाथ बढ़ाया और उसने भी··· और तार का करुण स्वर झन··· से टूट गया—वह सीढ़ियों से उस युवक का हाथ पकड़े खिलखिला कर हँसती हुई ऊपर चली गई।

और राजेन बाबू नीचे पथ पर उतर आये। रात भर नींद नहीं आई। चिन्ता-प्रवाह तीव्रगति से एक के बाद दूसरा मोड़ पार करता जा रहा था··· 'इस ढलती उम्र में उस पर अधिकार जमाना चाहता हूँ। वह कोमल नव-विकसित फूल··· वह किसी युवक से प्रेम करती है··· वह युवक सुन्दर भी तो है··· वह उससे जरूर प्यार करती है, और वह··· हाँ वह भी। वह शायद उसे अपने साथ ले जायेगा··· न जाने कितनी दूर··· उन दोनों की शादी हो जायेगी··· कितना सुन्दर होगा··· लेकिन मैं! मैं क्या?—सारी दुनिया घूम रही थी, आसमान, जमीन, कमरा सब कुछ··· मानो रेगिस्तान के बीच में किसी बवण्डर में फँस गये हैं···।

समस्या का हल तो न हो सका फिर भी सुबह उन्होंने अपने को काफी हल्का महसूस किया—जैसे बहुत बड़ा बोझा उनके सिर से

उतर गया हो। शाम को वे स्केटिंग रिन्क या क्लब नहीं गये, अब कहीं जाने की आवश्यकता नहीं—घूमने चल दिये।

निर्जन सड़क पर चले जा रहे थे। सूरज पहाड़ियों के पीछे छुप चुका था; हल्की काली छाया से रास्ता कुछ अन्धियारा सा हो गया था, दूर देहरादून के खिलौने से शहर पर तब तक धुन्धली आभा थी। कलरव से वे चौंके—ऊपर पंछी अपने-अपने नीड़ों की ओर जा रहे थे; थोड़ी देर में सब कुछ शान्त होता चला गया··· और फिर वही रिंक, उन्होंने देखा, 'वह उस सुन्दर युवक के हाथ में हाथ डाले ऊपर चली गई··· कितनी खुश है वह··· जैसे जीवन का सब कुछ मिल गया हो··· कितनी सुन्दर अनुभूति हो रही है··· आह··· ! अचानक रास्ते की बत्तियाँ जल उठीं, वे चौंके और फिर पथ की निर्जनता में आ गये। लेकिन कल्पना मीठी होती है—सोचते चले गये···वह उस युवक के साथ कितनी खुश होगी··· जीवन की पूर्णता उसके कदमों को चूमेगी, और—मसूरी का शहर स्वप्नलोक की स्वर्ग-पुरी की भाँति दिखाई दे रहा था, एक शान्त वातावरण··· एक अनोखी शान्ति, जैसे वे न जाने कितने दिनों से ऐसी निर्जनता को चाह रहे थे—कदम धीरे चल रहे थे··· हृदय की गति धीमी पड़ चुकी थी।

अचानक आहट पाकर उन्होंने पीछे मुड़ कर देखा—एक पुरुष और नारी—एक दूसरे के बगल में हाथ डाले चले आ रहे थे—कितने सुन्दर लग रहे हैं। वह जोड़ा उनके और पास आ गया।

···गाड़ी और तेजी से चली जा रही थी, गाड़ी की खड़खड़ाहट से सारा वातावरण गूँज रहा था।

वे और पास आ गये। राजेन बाबू ने सुना स्पष्ट सुना—"मिली ! माई डार्लिंग ···"

···गाड़ी एक पुलिया पर से तेजी से गुजर गई···।

राजेन बाबू चौंके, लेकिन उन्होंने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। एक

लाइट पौस्ट के पास जोड़ा तेजी से निकल गया। अंग्रेजी शराब की मीठी मीठी बू पास से उड़ गई—राजेन बाबू चौंके—कौन···वही !··· लेकिन यह युवक वह नहीं है··· वह सुन्दर था··· वह इससे प्यार करता था—यह शराबी है—यह उससे प्यार नहीं कर सकता ···नहीं··· कभी नहीं। उन्हें महसूस हुआ मानो उनकी अमूल्य सम्पत्ति उनसे कोई बरबस छीने ले जा रहा है··· और वे मजबूर थे··· ।

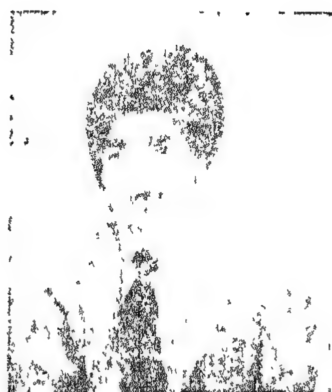
"डार्लिंग ! तुम उस कुमार को प्यार करती हो ?" पुरुष शराब के नशे में चूर था।

"वह तो बिलकुल प्रेमी है—मूर्ख ! समझता है जैसे मैं उसकी खरीदी हूँ—थोड़ा लिफ्ट दिया नहीं कि कदमों पर आ गिरा··· छोड़ता ही नहीं चाहता" वह कह रही थी, और पुरुष ने उसे अपनी बाँहों में भर लिया··· और एक चुम्बन — ।

गाड़ी अन्धकार को चीरती हुई तेजी से आगे बढ़ रही थी, पीछे एक छोटा सा स्टेशन छूट गया—जिसमें कुछ शोर गुल था; दूर सिगनल की लाल-हरी रोशनी चमक रही थी। बाहर अन्धकार में रहस्यमय चलचित्र चल रहा था, दृश्य बदल रहे थे··· और एक पटरी बगल से गुजर रही थी जो कमरे की वैद्युतिक रोशनी से चमक रही थी—यह पटरी दूर से साथ-साथ चली आ रही है··· न जाने कहाँ तक चलती रहे।

—: ० :—

# जगतमोहनसिंह 'अचल'



'अचल' जी का जन्म ८ जनवरी १९२८ को पश्चिमी पाकिस्तान के स्यालकोट नगर में हुआ। पारिवारिक वातावरण का आप की साहित्यिक रुचि पर अधिक प्रभाव पड़ा।

आपकी पहली कहानी सन् १९४२ में प्रकाशित हो गई थी परन्तु ठीक रूप से १९५४ से आप आकाशवाणी जालन्धर के लिए लिखने लगे और आकाशवाणी के अन्य केन्द्रों के लिए भी आप नाटक आदि लिखते रहते हैं।

आपकी सामाजिक कहानियों में रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज होती है और मनोवैज्ञानिक कहानियों में सूक्ष्म भावों और उद्वेगों का विश्लेषण।

कहानियों के गठन, भाषा और भाव में सरल भाषा और चुस्त वाक्य का ध्यान रखते हैं। आपका विचार है कि हिन्दी साहित्य में अभी तक बहुत थोड़ी सफल मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी गई हैं अतः इस ओर आपका विशेष झुकाव है।

# देवता

आप उससे दो मिनट बात करें तो, आप अपने में नई स्फूर्ति महसूस करेंगे, अपनी कमी को महसूस करेंगे। उसकी बात का ढंग ही ऐसा है, लेकिन जितनी देर आप उसके सामने रहेंगे, आप यह कभी सोच नहीं सकेंगे। आपको कितना ही आवश्यक काम क्यों न हो, आप की यह हिम्मत नहीं हो सकेगी, कि आप उससे आज्ञा मांग सकें। उसकी बातों में जादू है, बला की सच्चाई है, जिंदा दिली है, और तीखापन भी। आपको उसकी बातें आँखों में आँखें डालकर सुनना होती हैं। उसकी आँखों में विचित्र-सी चमक है। उन आँखों के पीछे क्या छुपा है, कोई नहीं जानता है।

उसके साथ अक्सर दो तीन साथी होते हैं, पीले ज़र्द चेहरे लिये, जिन पर मदन के प्रभुत्व की गहरी छाप होती है। उसके और भी बहुत से जान पहचान के हैं, बड़े बड़े अधिकारी, धनी लोग, जिन पर भी मदन की छाप है, कुछ और रंग लिए। जिसे वे आज तक नहीं समझ सके। यही मदन की सबसे बड़ी खूबी है, कुशलता है।

मदन एक मामूली सा बाबू है, जिसे एक सौ दस रुपये महीने के बाद मिलते हैं, इसे भी बहुत कम लोग जानते हैं, क्योंकि उसके पिता बहुत बड़े जमींदार हैं, और भाई सेना में उच्च-अधिकारी। कल्पना को वास्तविकता में ढाल देना उसके बाएँ हाथ का काम है। उसके सूट-बूट, कॉफीघर और होटलों में अक्सर देखे जाने पर कौन कह सकता है कि मदन को केवल एक सौ दस रुपए मिलते हैं, और उसके पिता की गाँव में छोटी सी दुकान है, और भाई चपरासी।

लोग उसे बहुत ही खुश-दिल और सुखी समझते हैं, लेकिन उसका

रोग्रां-रोग्रां दुःखी है, पीड़ा और निराशा से भरा हुआ। उसे अपनी नौकरी बबाल लगती है, अपना आप एक बोझ लगता है, जिसे वह एक मशीन की तरह उठाए जा रहा है। वह सदा प्यासा रहता है, हसरतों से भरा हुआ। उसके दफ्तर में कई लड़कियाँ भी काम करती हैं। जब भी कोई लड़की उसके पास से गुजरती है, तो उसकी नज़रें उस लड़की के आरपार हो जाती हैं, उसके शरीर की गोलाइयों में वह उलझ जाता है। उसकी आँखों में अजीब सी चमक आ जाती है, वह खिज उठता है, उसकी बात का लहजा ही बदल जाता है। उसे अपना काम अच्छा लगता है, अपनी फाइलें अच्छी लगती हैं, अपना आप अच्छा लगता है। फिर वह झुँझला उठता है, उसे अपने पर शर्म आती है, अपनी फाइलों को इधर उधर करता है, विचित्र सी कशमकश में, वह कांप उठता है, पसीना पसीना हो जाता है, उसे अपना शरीर ठण्डा लगता है, उसे लगता है कि वह दफ्तर की छत और फर्श के बीच में दबा जा रहा है। वह घबरा कर कमरे से बाहर आ जाता है, इधर उधर घूमता रहता है। कुछ देर बाद थका हारा अपनी कुर्सी पर आकर बैठ जाता है। उसे मेज पर फैले हुए कागज़ अजीब से लगते हैं, गोल गोल, लहराते हुए, सुगन्ध भरे, वैसे ही जैसे कि किसी लड़की के पास से गुज़र जाने पर होते हैं। वह अपने पर फिर झुंझला उठता है। यह सब कुछ उसके अन्दर होता है, कोई उसकी उलझन को आज तक नहीं जान सका।

उसके कान सदा कोमल, मधुर आवाज़ सुनने को बेचैन रहते हैं, कि कोई लड़की स्वयं आकर उसे कहे "आओ मदन घूमने चलें, मदन तुम कितने अच्छे हो, तुम्हारी बातें कितनी प्यारी और दिलचस्प हैं।" या वह सोचता कि "शैल उससे एक बार बात कर ले, तो फिर वह कभी राजेश से बात नहीं करेगी, क्या राजेश से वह सुन्दर नहीं? शैल क्यों घण्टों बैठी राजेश से बातें करती रहती है" या "मिसिज लाल कितनी अच्छी है, अगर वह उसका पति होता तो उसे निखार देता।" अपनी इस प्यास को दूर करने के लिए मदन ने कितनी ही कहानियाँ

अपने और नीला, शीला, रजनी, कामिनी के बारे में कही होंगी। उसकी इन कहानियों की असलीयत को आज तक कोई नहीं जान सका।

हिपनाटिज्म का भी वह माहिर है। कहा करता है कि उसकी आँखों में वह शक्ति है कि······जिसे चाहे वह अपने वश में कर सकता है। चलती घड़ी को आँखों के तेज से बन्द करके वह कइयों को अचम्भे में डाल चुका है। इस बात में जो राज है, वह स्वयं ही जानता है। वह आपकी किस्मत को बना या बिगाड़ भी सकता है। वह चलता फिरता ज्ञान भण्डार है। आपके हर प्रश्न का उत्तर उसके पास मौजूद है।

दिन भर का थका जब वह घर लौटता, तो उसे ऐसे लगता, जैसे वह स्वर्ग को छोड़ कर नर्क में आ गया हो। उसकी बीवी उसकी दशा को देख कर सहम जाती है, घबरा जाती है। चेहरे पर सिकुड़नें गहरी हो जाती हैं, जो इन सात सालों में दिन प्रति दिन गहरी होती जा रही हैं। कितनी खुश थी वह, जब उसका विवाह हुआ था। कितनी उमंगें थीं उसके मन में, लेकिन न वे पनपीं, न खिलीं। विवाह के दो साल तक वह अपने पति के पास न आ सकी। इस बीच में उसकी कई सहेलियों की शादी हुई, हँसतीं, चहकतीं सभी चली गई। वह सिसकती रही, तड़पती रही, अकेली।

दो साल के बाद उसे पति के पास आने का अवसर मिला, वह भी तब जब मदन का पिता जमना को उसके पास छोड़ गया। मदन ने आज तक खुलकर जमना से बात नहीं की थी। कितनी रात गए तक वह अपने देवता की प्रतीक्षा करती रहती। मदन को खाना खिलाती, बर्तन साफ करती, बिस्तर बिछाती। दिन भर का थका मदन बिस्तर पर पड़ते ही सो जाता। जमना उसे देखती रहती, जो उसके अङ्ग अङ्ग का स्वामी था। वह मदन के सुन्दर और बलिष्ठ शरीर को देखती रहती और फिर अपने को देखती तो सिमट जाती। हौले हौले वह

मदन के पांव दबाती, वह सोचती, "कितना काम करना पड़ता है मदन को, कैसी नौकरी है, जी-जान मार कर काम करना होता है, उसके लिए, घर के लिए," तो जमना की आंखें छलछला आतीं। वह पास सोई बालाओं को देखती, तो सिहर उठती, और खुश भी होती, कि वे उसके देवता की निशानियाँ हैं।

जमना के लिए आज का दिन भी ऐसा ही है, कल का दिन भी ऐसा ही होगा, और आज से एक साल बाद का भी वैसा ही होगा। जमना का जीवन एक सांचे में ढल चुका है।

मदन इन सब से बेखबर नहीं। वह कभी कभी काम कर रही निराश उदास जमना को देखता, या अपनी बालाओं के मुरझाए चेहरों को देखता, तो उसके मन में टीस उठती। उसने कभी जमना को प्यार नहीं किया, अपनी बच्चियों को कभी सीने से नहीं लगाया। वह फिर घबरा उठता, और कपड़े पहन कर बाहर निकल जाता। अपनी बेबसी, अपनी कमज़ोरियों को, मित्रों के कहकहों और शराब में डुबो देता। जब वह बहुत रात गए घर लौटता तो जमना बैठी होती उसकी प्रतीक्षा में बालाओं के फटे कपड़ों को पेबन्द लगाती हुई। चुपचाप वह खाना परोस देती, बिस्तर बिछा देती, और मदन सो जाता। थकी-हारी वह भी सो जाती, मदन के चरणों में। अपने देवता के स्पर्श से उसका शरीर तन जाता, वह आनन्द विभोर हो जाती। इस तरह से उसने सात साल काटे थे।

मदन के अन्दर भयानक तूफान उठते हैं। एक विचित्र सी कमी को वह महसूस करता है, प्यास को महसूस करता है, जो कभी नहीं बुझ सकती, न दोस्तों में, न शराब में, न जवानियों में। वह हरदम बेचैन रहता है, ढूंढ़ता रहता है।

वह मिलता है, चेहरे पर मुस्कान लिए, सजीले वस्त्रों में। उसके साथ साथी होते हैं, जो दुःख-सुख में उससे सलाह लेते हैं, मदन के

बताए मार्ग पर चलते हैं। कोई भी चीज खरीदी जाती है तो मदन से पूछा जाता है। घर के झगड़े, साथियों के झगड़े मदन के आगे रखे जाते हैं। मदन की परख को, सूझ को आज तक कोई ललकार नहीं सका, क्योंकि मदन अक्सर कहा करता है "मेरे पास जिन्दगी के निचोड़ हैं।" सभी समझते हैं कि मदन सच कहता है। मदन जैसा आदमी झूठ कैसे कह सकता है, क्योंकि वह देवता है, जमना का, अपने साथियों का।

---

## और बर्फ गिरती रही......

राकेश ने गहरी सांस ली, जो धुँआ बनकर विहीन हो गई। सड़क के किनारे एक छोटे से वृक्ष का सहारा लेकर वह खड़ा हो गया, सिगरेट के बचे टुकड़े को जेब से निकाल कर सुलगाना चाहा, कांपती लौ सिगरेट तक पहुँचने से पहले ही बुझ गई। कुछ देर तक वह खाली डिबिया को देखता रहा, फिर उसने सिगरेट के टुकड़े को फेंक दिया, जो गिरती बर्फ में गुम हो गया।

धीमे से प्रकाश में बर्फ फैलती जा रही थी, और उसकी आत्मा हड्डियों के ढांचे में सिमटती गई। पुराने दर्द को लिए वह दुनिया से सब किसी से भाग जाना चाहता था।

बर्फ गिरती रही और फैलती रही.........

कई बार उसने अपने को खो देना चाहा लेकिन न खो सका, जाने कौन सी शक्ति उसे सचेत कर देती, और वह वास्तविकता में आ जाता। वह घूमता रहता बेचैन, बेक़रार। कभी उसके सामने सुनीता की मधुर मूर्त्ति आ जाती, लहराती आवाज़ को लिए, जो उसके आस पास एक घेरा सा बना लेती, वह अपने कानों पर हाथ रख लेता तो आवाज़ अन्दर से उभर आती, वह चीख उठता—"सुनीता !....सुनीता मुझे क्षमा कर दो।" दूसरे ही क्षण एक और मूर्त्ति उभर आती, जो मुस्कराती जाती, फैलती जाती, यहाँ तक वह स्वयं उसमें समा जाता, उलझ जाता।

इसी मुस्कान ने उसे पागल बना दिया था, इसी मुस्कान के लिए उसने अपना सब कुछ लुटा दिया, यही मुस्कान पाने के लिए वह झुरमुट में मिल कर रजनी के पास जा पहुँचता। जिधर रजनी की मुस्कान

जाती मानो प्रलय आ जाती। वह भी एक चतुर मकड़ी की तरह हरएक को अपने जाल में कसती गई।

जब वह रजनी के सामने होता तो, उसे लगता वह वहीं, उसकी आत्मा तक उसके पांव में लोट रही है। राकेश ने अपने को कई भुलावे दिये, बहुत रोका, लेकिन कुछ नहीं हुआ। एक बार वह सभी पिकनिक पर थे, रमन था, अशोक, रजनी, बेला, रेखा, क्लब के बहुत से सदस्य और वह स्वयं। रजनी कितना अच्छा गा लेती थी, सभी ने मजबूर किया, राकेश और रजनी दोनों गाते रहे। रजनी आज बहुत खुश थी। राकेश आज तक अपने मन की बात रजनी से नहीं कह सका था, उसे लगा, आज अवसर है, उसे अपने मन की बात कहनी ही होगी। वह सबसे दूर एक पत्थर का सहारा लिए, सोच रहा था, कि रजनी उसके लिए चाय लेकर आई।

"क्या कर रहे हो यहाँ ?" रजनी ने मुस्काते हुए पूछा। राकेश ने प्याला रजनी के हाथ से लिया और बड़ी बड़ी आंखों में झांकते हुए कहा, "बैठो रजनी, मैंने तुमसे बहुत कुछ कहना है।"

रजनी बैठ गई।

"सुनो रजनी······," लेकिन आवाज गले तक रह गई। रजनी उसे कौतूहल भरे नेत्रों से देखती रही, फिर राकेश जाने क्या क्या कहता रहा, इतने समय से दबे उद्‌गारों को उसने निकाल कर रजनी के सामने रख दिया। रजनी ने नजर भर कर राकेश की ओर देखा और कहा, "नहीं······राकेश, अब नहीं, अब बहुत देर हो चुकी है।" वह उठी और चुपचाप चलदी। राकेश ने देखा कि वह हँसती रही, चहकती रही, रमन की बांह में बांह डाले।

रजनी ने अपनी लीला समेट ली और रमन के साथ चली गई। राकेश देखता रह गया, रमन राकेश का ही मित्र था, बचपन का साथी, वह भी अभी अमेरिका से आया था। राकेश ने ही रमन को रजनी से

गिलाया था। राकेश ने कोई गिला नहीं किया, चुपचाप उसने आंचल को हृदय में भींच लिया।

रजनी के इस प्रस्थान ने राकेश के लिए एक ऐसा तूफान ला दिया, जिसने उसके जीवन को जड़ से उखाड़ दिया। राकेश को अपना आप, अपना सम्पूर्ण वातावरण व्यर्थ लगता। उसने शराब में, थकी-हारी, लुटी जिन्दगी को डबोना चाहा, लेकिन ज्यों ज्यों वह गिरता अतीत के चित्र और भी उभर आते, उसे अपने पर दया आती, वह अपने को कोसता, सटपटाता, कि वह अपने भयावने अतीत और बोझिल वर्तमान से मुक्त नहीं हो सकता।

बर्फ गिरती जा रही थी······राकेश की आंखें बन्द होती जा रही थीं, उसे मीठी मीठी नींद आने लगी, वह धीरे धीरे नीचे गिर रहा था, उसे आनन्द आ रहा था, असीम।

सहसा किसी ने झिझोड़ दिया, "अरे गुप्ता यहाँ क्या कर रहे हो, क्लब क्यों नहीं आए," शराब की तेज दुर्गन्ध ने उसे सचेत कर दिया। लड़खड़ाती आवाज़ में उस पुरुष ने फिर कहा, "कामिनी को साथ क्यों नहीं लाए, कहाँ है वह ?" अपनी बांह को छुड़ाते हुए राकेश ने कहा, "आप भूल कर रहे हैं, मैं······।"

"दोस्त हमसे बहाने नहीं चलेंगे। आज कुछ सरूर नहीं आया, क्लब में कोई भी काम की सूरत नहीं थी," कहते कहते वह गिरने लगा, राकेश ने उसे थाम लिया। उस पुरुष ने ज़ोर से राकेश की बांह पकड़ ली, "चलो भी न, घर के पास से नहीं जाने दूँगा।" राकेश ने एक बार अपने को छुड़ाना चाहा, लेकिन नहीं छुड़ा सका। शराबी की ज़िद्द को जानते हुए चुपचाप उसके साथ चल दिया।

कमरे में हलका हलका प्रकाश था, अंगीठी में आग जल रही थी। सर्दी से एक दम गर्म कमरे में आते, राकेश का सिर घूमने लगा। कमरे में पड़ी चीजों के साए विचित्र से दीवार पर बनते जा रहे थे। राकेश

अपने सिर को थामते हुए, सोफे पर बैठ गया।

"राजो," कड़कती, लड़खड़ाती आवाज़ फिर उसने सुनी। दूर से उसे कोई आता दिखाई दिया, सफेद साड़ी में यौवन के निखार को लिए, लेकिन अस्त-व्यस्त दशा में, राकेश को लगा वह स्वप्न देख रहा हो, उसने ज़ोर से आँखें मीच लीं।

"जी," राजो ने आकर कहा।

"कमरे में लाइट क्यों नहीं है ?"

राजो ने स्विच दबाया, कमरे में प्रकाश नहीं हुआ।

"बल्ब फ्यूज हो गया लगता है," राजो ने कहा।

"बल्ब क्यों फ्यूज हो गया है," लड़खड़ाती आवाज में उस पुरुष ने पूछा, फिर आलमारी से शराब की बोतल निकाली "अच्छा जाओ कुछ खाने को लाओ," फिर राकेश को सम्बोधित करके कहा, "तुम भी पिओगे।" राजो ने अभी तक राकेश को नहीं देखा था, उसने देखा कि राकेश सिर झुकाए बैठा है। उसने सिर उठाया, और राजो की तरफ देखा। राकेश को राजो की आंखों में सहानुभूति की झलक दिखाई दी, दूसरे ही क्षण वह चमक विलीन हो गई, वह राकेश को इस तरह से देखने लगी मानो मूर्त्ति हो, निर्जीव। राकेश इस परिवर्तन को देखकर सिहर उठा। "नहीं मैं नहीं पीऊँगा" धीमे से उसने कहा। राजो सुनकर मुस्कायी और चली गई।

"अमां खाना पीना ही तो ज़िन्दगी है, लो पीओ," गिलास भर कर उसने राकेश के हाथ में दे दिया, और स्वयं गिलास को खाली करके दूसरी बार भर लिया। किशोर का सिर चकरा रहा था, गिलास होटों तक आया, उसने सामने देखा, शीशे में अपनी छाया दिखाई दी, जो धीमे से प्रकाश में विचित्र सा रूप लिए थी। गिलास होटों तक अटका रहा। अपने इस परिवर्तन को देखकर वह चकित रह गया, कि अतीत के आघात उसके चेहरे पर साफ झलक रहे थे।

राकेश ने गहरी सांस ली और गिलास को पास पड़ी मेज पर रख दया।

"तुम कैसे हो गुप्ता, पीते क्यों नहीं।"

वह चीख कर कहना चाहता था कि वह गुप्ता नहीं है, क्यों उसका मजाक बनाया जा रहा है। उस पुरुष ने अपना गिलास तीसरी बार भरा और बोतल को घुमा कर फैंका जो शीशे से जा टकराई, शीशा टुकड़े टुकड़े हो गया।

आवाज को सुनकर राजो आई "कुछ खाने को लाई हो," लड़खड़ाती आवाज में उसने पूछा, और आगे को बढ़ा। दो ही पग आगे गया होगा कि मदहोश होकर गिर पड़ा। राजो वहीं खड़ी रही द्वार के पास, वह आगे नहीं बढ़ी। राकेश उठा, उसने गिरे पुरुष को उठाया और कहा—इन्हें कहाँ लेजाना है।" आवाज को सुनते ही राजो तन कर सीधी खड़ी हो गई, फिर चुपचाप वह आगे बढ़ी, और राकेश उसके पीछे हो लिया। साथ के कमरे में राकेश ने उसे बिस्तर पर डाल कर कम्बल औढ़ा दिए।

राकेश की पीठ अभी तक राजो की तरफ थी, उसे लगा जैसे दो आंखें उसके आरपार हो रही हों। वह मदहोश पड़े उस पुरुष को देख रहा था। वह सोचने लगा 'यह कितना सुखी है, इसे कोई भी चिन्ता नहीं।'

"आपको पहले मैंने यहाँ नहीं देखा," राजो की आवाज ने उसे चौंका दिया। इस पर भी राकेश ने राजो की तरफ मुँह नहीं किया, वह एक टक उसी पुरुष को देखे जा रहा था।

"मैं आज ही यहाँ आया हूँ।"

"आप इन्हें कैसे जानते हैं ?"

"मैं इन्हें नहीं जानता," राकेश ने कहा!

"तो आप......," अचम्भे से राजो ने पूछा।

"यह मुझे रास्ते से खींच लाए हैं गुप्ता समझते हुए।"

"ओ!" वह कह गई, आवाज में वेदना छुपी हुई थी।

"इधर आइये इस कमरे में," राजो ने कहा।

राकेश घूमा, राजो आगे बढ़ चुकी थी।

"मुझे अब आज्ञा दीजिये," राकेश ने कहा।

"बर्फ अभी पड़ रही है, थोड़ी देर रुक जाइए।"

राकेश आगे बढ़ा, उसने देखा कमरा बड़े ही अच्छे ढंग से सजाया गया था, हल्के पीले रंग का कमरा था, गुलाबी और नीले रंग के फूलदार पर्दे, बहुत ही भले लग रहे थे। कमरे में बहुत ही बढ़िया कालीन बिछा हुआ था, कमरे के बीच छोटी सी मेज पर नर्गिस के फूल हल्के नीले प्रकाश में बहुत ही अच्छे लग रहे थे।

"बैठिये," राजो ने कहा।

राकेश चुपचाप बैठ गया, वह एकदम वहाँ से चला जाना चाहता था, कमरे का वातावरण उस पर छाया जा रहा था। 'आप थके लगते हैं, मैं कॉफी बना कर लाती हूँ' राकेश 'न' कहने को था कि राजो चली गई।

राकेश का सिर तेजी से घूमने लगा, उसे यह सब एक डरावना सपना लग रहा था। उसने ज़ोर से अपने को झिझोड़ा, स्वप्न नहीं वह वास्तविकता में था। राजो कॉफी लेकर आ गई, कॉफी का प्याला उसने राकेश के आगे रख दिया।

"आपने ऐसे कष्ट किया, नौकर को भेज देतीं," कुछ कहने के लिए फिर राकेश ने कहा।

इस घर में नौकर नहीं रह सकता, प्रोफेसर राकेश!"

प्याला राकेश के हाथों में छलछला गया, हर बात उसके लिए

पहेली थी, क्या उसका अतीत कहीं भी छुपा नहीं रह सकता। राकेश फटी फटी आँखों से राजो को देखे जा रहा था।

"आप मुझे......।" कहते कहते राकेश कांप उठा।

"जी हाँ मैं आपको पहचान गई थी, आपके एक ही शब्द से, आप लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं, वहीं आपको देखा था। मैं भी कुछ समय के लिए वहाँ पढ़ सकी, फिर पिता जी की तबदीली हो गई, हमें वहाँ से आना पड़ा। आप दर्शन पढ़ाते हैं न, मैंने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी थी।"

राकेश सहमा हुआ उसे देख रहा था।

"आपका एक भाषण भी मैंने सुना था, मुझे आज तक एक एक शब्द याद है 'मानव, उसका वातावरण और उसका प्रभाव,' इस विषय पर था। आपने किस सुचारु ढंग से मानसिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया था," फिर कुछ रुक कर उसने कहा, "आपकी कॉफी ठण्डी हो रही है।"

"ओह !" कहते राकेश ने कांपते हाथों से प्याला उठाया।

"अगर ठण्डी हो गई है तो मैं और बनाए देती हूँ।"

"नहीं अभी गर्म है," कॉफी पीते राकेश ने कहा।

राजो ने फिर कहना शुरू किया, "आपके उस भाषण ने मुझमें एक नई स्फूर्ति ला दी। मैं अपने से, अपने वातावरण से सहमी रहती थी। उस दिन से मुझमें जाग्रति आ गई, आपकी कही बहुतसी किताबों को पढ़ा। एक एक बात, एक एक शब्द ने मुझमें हलचल पैदा करदी।" कहते कहते राजो की आंखें फैलसी रही थीं, फिर एकाएक वह चमक आंखों से लुप्त हो गई, आवाज़ में तीखापन आ गया "मैंने अपने को जाना, अपने वातावरण को जाना, तो बहुत कुछ खो दिया, सुनीता भी मुझे कितना समझाती रही, मगर मैंने उसकी नहीं मानी। मैं नए विचारों के झंझावत में तिनके के समान बही जा रही थी, मैंने रनधीर

को छोड़कर शंकर को अपना लिया, क्योंकि शंकर अमीर था, उसके पास पैसा था, नाम था, और रनधीर एक मामूली अधिकारी,'' वह रुकी और निश्वास छोड़कर उसने कहा, 'कितना अच्छा होता कि मैं अपनी पहली दुनिया में रहती, लेकिन आपके इस भाषण ने, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण ने……।" राजो का एक एक शब्द वज्रघात की तरह राकेश पर पड़ रहा था। राकेश सुनता रहा चुपचाप "मैंने कई बार आपसे मिलने की सोची ताकि मैं पूछ सकूं कि मानव वातावरण पर कैसे अधिकार कर सकता है। आपने कहा था, 'चाहे वातावरण का प्रभाव मानव पर पड़ता है, फिर भी वातावरण को अनुकूल करना मानव के अपने हाथ है,' तो फिर कहिए, मैंने क्या नहीं किया, आप मेरे पति को देख चुके हैं, जिन्हें अपना पता नहीं, घर का पता नहीं, इनके लिए पैसा शराब…और…मैं…क्या कहूँ।" राकेश अपराधी की तरह सब कुछ सुन रहा था।

राजो कहती गई, "मुझे शराब से नफरत नहीं; लेकिन मुझे उनका बहकना, मदहोश होना बुरा लगता है, मैंने कई बार खुद पिलाने का प्रयत्न किया, सब कुछ सहा है मैंने, एक बार उफ तक नहीं की, फिर कहिए, यह वातावरण मेरे अनुकूल क्यों नहीं ?" राकेश ने माथे का पसीना पोंछा, उसके मस्तिष्क में कशमकश हो रही थी। धुंधला भयावना अतीत राजो के उद्‌गारों के निकालने से छिटा जा रहा था, उसके मुख पर हल्की सी मुस्कान खेल गई।

राजो ने इस मुस्कान को देखा। इस मुस्कान ने उसके उद्वेगों को शान्त कर दिया। उसके उद्‌गारों का इतना छोटासा उत्तर हो सकता है, राजो कभी समझ नहीं सकती थी। लेकिन राजो क्या जानती थी कि इस मुस्कान के पीछे राकेश की हार छिपी है।

"क्षमा करें, जाने मैं क्या कहती रही हूँ आपसे, मुझे आपसे यह सब नहीं कहना चाहिए था।"

"हर प्राणी को अपने भाव व्यक्त करने का अधिकार है" यह

शब्द राकेश ने इस तरह से कहे, कि राजो की आंखें मुस्करा उठी।

राकेश के सामने सुनीता की परिचित मूर्त्ति आ रही थी, उसकी एक एक बात याद आ गई, राकेश को लगा कि वह कायर है, क्यों अपने को पश्चाताप के धुंधलके में लपेटे घूम रहा है।

राजो ने फिर कहा, "सच जानें मुझे बहुत ही अफसोस है कि यह सब मैं आप से क्यों कह गई, आप यहाँ अकेले आए हैं।"

"जी हाँ।"

"कहाँ ठहरे हैं आप ?"

मेरा सामान अभी 'क्लोक रूम' में है, कुछ निश्चित नहीं किया," राकेश कह तो गया, लेकिन उसके कानों में फिर से सुनीता की आवाज़ गूँजने लगी।

"आप यहाँ ही क्यों नहीं आ जाते" राजो ने कहा।

राकेश अपने विचारों में उलझा बैठा था, "आपने कुछ कहा," उसने राजो की ओर देखते हुए कहा, कहते कहते उसने अपने शरीर में सिहरण को अनुभव किया।

"अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिये" राकेश ने कहा।

राजो उसे देखे जा रही थी, मानो उसकी आंखें कह रही हों—"तुम यहाँ ही क्यों नहीं आ जाते, मुझे तुमसे कितना सुख मिल रहा है, अपने मन की मैं तुमसे कह सकती हूँ।" वह इन सब विचारों को दबाए उठी, खिड़की से परदा हटा कर देखा।

"बर्फ अभी गिर रही है," और फिर चुपचाप आकर राकेश के सामने बैठ गई।

दोनों चुपचाप बैठे रहे, अपने अपने तूफान को भींचे हुए।

राकेश को ऐसे लग रहा था कि उसका अतीत एक भारी चट्टान बनकर उसके सामने है, यदि एक पग भी उसने आगे बढ़ाया, तो वह

उससे टकराकर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा। आज उसे पता लगा कि कल्पना और वास्तविकता में कितना अन्तर है।

राजो को क्षीण से प्रकाश में राकेश के चेहरे पर आ रहे मनोभाव बहुत ही अच्छे लग रहे थे, वह हल्के हल्के मुस्काने लगी, उसे लगा, उसका सारा शरीर शिथिल होता जा रहा है। राकेश की वही मुस्कान उसके सामने आ गई। राकेश ने ठीक ही तो कहा था, 'वातावरण को अनुकूल करना, मानव के अपने हाथ है।' शंकर उसके पति ने वातावरण को अनुकूल कर लिया है, उसे कोई चिन्ता नहीं, उसे शराब और यौवन का निखार चाहिए, जिसे पाकर वह कितना खुश रहता है, वातावरण पर पूर्णतया छाकर...तो वह भी क्यों नहीं......

साथ के कमरे से एक "ओह!" उभरी। राजो और राकेश दोनों की नज़रें उधर घूम गईं, दोनों के विचार-प्रवाह रुक गए।

राजो राकेश को देखे जा रही थी, राकेश फिर मुस्का दिया। राजो को लगा कि राकेश ने उसके मन में आ रहे विचारों को अक्षराक्षर जांच लिया है, और वह मुस्कराहट राजो के जीवन पर भारी कटाक्ष है। अब वह राकेश की मुस्कानों को समझ सकी। साथ के कमरे से शंकर क्षीण थकी सी आवाज़ में "राजो, राजो" बड़बड़ा रहा था।

राजो एकदम उठी और तेजी से शंकर के कमरे में चली गई। राकेश एक क्षण तक वहाँ रुका, उसे राजो की सिसकियाँ साफ सुनाई दे रही थीं।

वह धीरे धीरे बाहर आ गया, और स्टेशन को चल दिया, मन में सुनीता की मूर्त्ति को लिए.........और बर्फ गिर रही थी।

---

# रतन सिंह 'हिमेश'



●

हिमाचल प्रदेश के तरुण कहानीकारों में श्री रतनसिंह 'हिमेश' का अपना ही स्थान है। तरुण कलाकारों में आप न केवल कहानीकार के ही रूप में ख्याति प्राप्त किए हुए हैं अपितु लोग इन्हें जर्नलिस्ट के रूप में भी जानते हैं। निस्संकोच हम इन्हें हिमाचल का सब से तरुण जर्नलिस्ट कह सकते हैं। आपका जन्म ११ सितम्बर १६३५ को शिमला से लगभग १० मील दूर रत्नपुर ग्राम में एक मध्यवर्गीय कुलीन किसान परिवार में हुआ। आप अभी चार वर्ष के ही थे कि पिता का देहावसान हो गया। पिता का साया सिर से उठने से यह नन्हा पुष्प काँटों और तूफानों में पला।

झंझावातों से खेल कर आपने सबसे पहले सन् ५२ में पहली बार कालेज के मैगज़ीन में "आल इण्डिया वन्दर कान्फ्रेंस" लिखकर अपनी महक बखेरी।

तरुण कलाकार ने १६५४ में अपना मासिक पत्र 'तरुण' चलाया। १६५५ में 'हिम-ज्योति' साप्ताहिक पत्र के सम्पादक मण्डल में भाग लिया। २ वर्ष तक इस पत्र का सम्पादन किया। इसी काल में कई लोकप्रिय कहानियाँ लिखीं।

आपकी कहानियों में समाज को झिंझोड़ने की शक्ति निहित रहती है।

# कोई क्या समझे

बर्फ़ पैरों तले ज़रक रही थी और आकाश पर बादल मण्डरा रहे थे, चांद कभी तैरते बादलों में छुप जाता तो कभी दूसरे बादल के टुकड़े की ओट से झाँकता नजर आता। ठण्डी वायु जैसे काटे जा रही थी। जाखू की चोटी पर धुन्द थी जैसे किसी बड़ी काँटेदार झाड़ी को रूई से भरे खेत से खेंचा हो और फिर उसे खड़ा कर दिया हो।

मैं रिज से जाखू पर जाने वाली सड़क पर चढ़ रहा था। हाँ, चढ़ रहा था क्योंकि यहाँ कोई फरलांग भर की लगभग सीधी चढ़ाई है। अभी हलवाई की दुकान के पास पहुँचा ही था कि सड़क के किनारे खड़ी महिला ने एक क़दम आगे बढ़कर कहा—

—देखिये, आप मुझे थापर साहब का मकान बता सकते हैं ?

जैसे पायल बज उठी, किसी ने सितार के तार हिला दिये—जी ! मैंने जैसे चौंक कर कहा।

—थापर साहब यहाँ कहाँ रहते हैं क्या आप बता सकते हैं ? वे लम्बे कदके हैं और ऐनक लगाते हैं रंग···

—मुझे तो पता नहीं। क्षमा कीजिए, मैंने बीच ही में टोक कर कहा क्योंकि थापर नाम के किसी व्यक्ति से मेरा परिचय नहीं था।

—तीन घण्टे हो गए हैं उनका मकान ढूंढ़ते। यह बर्फ़ ! उफ !! पांव ठिठर रहे हैं।

अब मैं बिल्कुल समीप था। आवाज में कम्पन, दर्द, टीस और थकावट का एक अजीब सम्मिश्रण था ! अनायास ही मेरी दृष्टि महिला के मुख पर पड़ी, क्या यौवन था ! मुख का हर नक्श जैसे किसी कुशल

मूर्तिकार ने उभारा था, रंग सफेद था—बिल्कुल सफेद ! वस्त्रों से भी यही लगता था कि यह एक सम्भ्रान्त महिला थी । यह सब कुछ एक दृष्टि में ही मुझे ज्ञात हो गया ।

—और अगर आज न मिले तो······

उसने जैसे अपने आप से कहा परन्तु जो भय इस वाक्य के साथ मिश्रित था वह भी अलक्षित न रहा ।

—तब क्या होगा ? मैंने एक अजीब ढंग में पूछ लिया ।

—तो सुबह दनदनाते घर पर आ धमकेंगे—उसने मेरी ओर विवश नज़रों से देख कर कहा ।

—इस सर्दी में कष्ट उठाने से तो बेहतर होगा कि आप घर पर बैठी रहें और सुबह की प्रतीक्षा करें ?

उसका एक ओर का होंट 'हूँ' के शब्द के साथ हिल गया ।

—और फिर जो इतना चलने से उन्हें गुस्सा आया होगा उसे कौन सहेगा ? उसने कुछ क्षण बाद कहा ।

—इतने गुस्सैल हैं ! काम कहाँ करते हैं ? मैंने पूछा कि कहीं इधर उधर पूछ कर कुछ पता किया जावे ।

—······दफ्तर में, वैसे उसे ठगी का महकमा भी कहते हैं, और वह ज़बरदस्ती मुस्करा दी ।

फिर उसने बताया कि एक लड़के को पता करने भेज रखा था और वह उसीकी प्रतीक्षा में खड़ी थी । वह लड़का भी उधर से गुज़र रहा था और रिक्वैस्ट करने पर उस की सहायता के लिये तैयार हुआ था । क्योंकि उसे प्रतीक्षा करनी थी और मैंने अनुभव किया कि वह बात-चीत करके समय बिताने को उत्सुक है अतः कुछ समय के लिये ठहरने का विचार कर मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि उसने कहा—

—उसका रंग भी साँवला सा है और जो ये नीचे से आदमी आ रहा

है ना (मैंने मुड़कर पीछे देखा) उसके बराबर कद है उसका। वह हमारा लैंडलॉर्ड है।

नीचे से आने वाला व्यक्ति पास से गुज़र गया, उस महिला ने उसे घूर कर देखा क्योंकि उसने ऐनक लगा रखे थे, मैंने भी उसे घूर कर देखा।

—और मैं घर पर दो महीने की बच्ची छोड़ कर आई हूँ, फिर मकान भी तो कैंथू में है !

जैसे उसके पास कहने को अनेक बातें थीं और अभी तक अकेली होने से अन्दर ही अन्दर उमड़ती-घुमड़ती सारी बातों को दबाए बैठी थी।

—आप स्वयं ही क्यों आई हैं ? मैंने पूछ ही लिया।

एक गहरे साँस के साथ वक्षस्थल उभरा और बैठ गया—

—सब कुछ तो है ! घर है—बाहर है, बिज़िनेस है, मगर मुझे ....मुझे...

और वह सिसक कर रोने लगी, गोरे-गोरे कपोलों पर लुड़कते आँसू चांद की एक झलक से चमक उठे। मैं हैरान खड़ा था, सोच न पा रहा था कि क्या करूं ? एक अपरिचित सम्भ्रान्त महिला बीच सड़क में मेरे सामने रो रही थी।

मुझे लगा जैसे उसकी आँखें आँखें नहीं बल्कि गहरे कुएँ हैं जिन्हें उल्टा दिया गया है या जैसे बरसाती आकाश में दो छिद्र कर दिए हों। ये एक माँ के आँसू थे ! भारतीय महिलाओं की सारी टीस, सारा दर्द जैसे इन दो कुओं में एकत्रित हो गया था और अब भर कर बाहर बहने लगा था, वे दो आँखें नहीं भारतीय समाज के दो रिसते हुए घाव थे बड़े और गहरे घाव !!

जब उसने स्वयं कुछ देर बाद आँसू पोंछे तो मैंने हिम्मत करके कहा—

—देखिये आपको इस प्रकार दुःखी नहीं होना चाहिए, इससे आपको ही क्षति पहुँचेगी। हाँ, कहने से दुःख कम हो जाया करता है ऐसा कहते हैं। क्या मैं आप···

वह जैसे इसके लिए तैयार ही थी और धीमी धीमी सिसकियों के बीच उसने कहना आरम्भ किया—

—हमारे जीवन में दो नन्हें फूल खिल गए थे, और उन्होंने कहा कि दो ही बालक काफी हैं, मैं भी यही चाहती थी, उन्होंने स्टेरिलाइजेशन करवा लिया, आप समझते हैं न !

—हाँ, हाँ मैंने कहा और वह आगे कहने लगी—

—न जाने कैसा हुआ वह स्टेरिलाइजेशन कि मुझे एक बार फिर सृष्टि का भार सहना पड़ा और मैंने सब कुछ खो दिया। हमारा प्यार का विवाह था और वह प्यार अब घृणा में बदल गया। वे मुझ पर सन्देह करने लगे और मैं उन्हें प्यार की सौगन्ध खाकर विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती थी। उन्हें अपने उन दो नन्हें फूलों से भी घृणा हो गई जो हमारी प्यार की वाटिका में उगे थे। अभी दो महीने हुए कि मुझे पता चला कि मैं अपनी ही जाति द्वारा ठगी गई, और अधिक दुःख तो इस बात का है कि एक और माँ पैदा हो गई ? न जाने उसके जीवन के कौनसे मोड़ पर दुःख बदा है ? दो बार माँ की ममता न पलती तो न जाने मैं उस जीवित माँस-पिंड के साथ क्या करती ? और वे सबूत मांगते थे··· ! क्या सबूत दूं मैं··· ?

सिसकियाँ तेज हो गईं थीं और फिर एकदम मुख मेरी ओर करके लगभग चीखते हुए उसने कहा—

—मैं पूछती हूँ तुम पुरुष क्यों इतने शक्की हो ? तुम्हारे अन्दर दिल की जगह पत्थर क्यों रखा है ? तुम क्यों इतने अन्धे होते हो ? क्यों ? क्यों ??

---

# नरक क कीड़े

"ओये करतारेआ ! आज सानूँ कुछ हिम्मत नाल काम लेणा पयेगा। ऐना···अहूँ···अहूँ···"

"हाँ, यार बचित्तर, पर मेरा ते आज साह खिच के आ रैहा है। बड़ा दर्द होन्दा है मा०···"

"गोली मार दर्द नूँ करतारेआ ! तू समझदा नईं। एना हिन्दुआ ने···अहूँ···" खाँसी के दौर ने वाक्य का गला घोंट दिया।

"बचित्तर सिंहां, वेख, साह दा कोई बसाह नहीं। ओए···बड़ा दर्द···(कराह के साथ एक भद्दी न लिखने योग्य गाली करतारसिंह की मूंछ और दाढ़ी के उलझे हुए बालों में से छनकर आई) अहूँ···अहूँ··· रब कोल असी कसी की जवाब देआंगे ? आज नहीं चलन देणी इन्हा हिन्दुआं···" और खांसी ने वाक्य को यहीं समाप्त कर दिया।

"हाँ, हाँ, अहूँ···अहूँ···अख थू···गुरू महाराज कह गए ने खालसा सवा लख···अहूँ···अहूँ···रब नूँ की जवाब देआंगे ? साह दा कोई बसाह नईं···अहूँ···अहूँ···" बचित्तर सिंह जैसे अपने आप से कहता गया।

× × ×

"राम कसम किरपाराम, कल इन दो···वालों ने क्या झगड़ा किया ? साले दो हैं मगर कैसे रोब गांठते हैं। हम इतने हिन्दू मर तो नहीं गए कि हम से ये दो लोग जप जी का पाठ करवाएँ···अहूँ··· अहूँ···आह···डाक्टर कह रहा था कि मेरी हालत अच्छी···अहूँ··· अहूँ···" खांसी ने वाक्य आगे न बढ़ने दिया।

"आज देखेंगे कैसे झगड़ते हैं ये ?" किरपाराम ने कम्बल को अपने ऊपर ठीक करते हुए कहा ।

"सबको आज एका करना चाहिए नहीं तो हम हिन्दू तो फूट से ही मरते आए हैं" पंडित हरिदत्त ने करवट बदल कर कहा ।

"हरि ओ३म् ! हरि ओ३म् ! तेरा ही सहारा है प्रभो । (जम्हाई आने पर चुटकियां बजाकर पं० विष्णुदत्त को भी जगा आ गई) अरे, इतनी सी बात पर अपने धर्म से डिग गए तो भगवान को क्या उत्तर देंगे ? उधर पंजाब···" तभी खांसी ने बाधा डाली ।

"अरे पंजाब में भी इन···वालों ने वो हड़दम मचाया कि हिन्दुओं का जीना···अहूँ···अहूँ···"

× × ×

सेनेटोरियम के इस पुरुषों के वार्ड में इसी प्रकार की बातें होने लगीं । टी०बी० के मरीज प्रतिदिन आरती करते थे परन्तु कल दो सिख मरीज़ों ने कहा था कि हफ्ते में कम से कम दो बार तो जपजी का पाठ सब मिलकर करें । पं० विष्णुदत्त सबसे पहले इसके विरोध में बोले । फिर सबने विरोध प्रकट किया ।

आज सिख मरीज आरती नहीं होने देना चाहते थे और हिन्दू मरीज हर कीमत पर आरती करने को तैयार थे ।

छः बजे की घण्टी बजी । खांसते, लड़खड़ाते, एक दूसरे को बुलाते हुए मरीज एक स्थान पर एकत्रित होने लगे । जो उठ नहीं सकते थे उन्होंने बिस्तर पर ही लेटे उधर मुँह कर लिया । अभी सब बैठ भी न पाए थे कि करतारसिंह ने सबको सम्बोधित करके कहा—"देखो भाइयो ! हम नहीं चाहते कि खाह-मखाह आपस में झगड़ें । आज एक बार फिर कह देता हूँ कि तुम्हारा धर्म है तो हमारा भी पन्थ है । हमारी कल वाली बात···अहूँ···अहूँ···" और वह खाँसी के वेग से

बिस्तर पर बैठ गया। रक्त-युक्त बलगम का एक लबदा आकर दाढ़ी में फंस गया।

"जा, जा, बड़ा आ गया पन्थ वाला" कई आवाज़ें खांसी की ठांय-ठांय में मिलकर उभरीं और साथ ही "जय जगदीश हरे" की ऊँची-नीची आवाज़ें गूंज उठीं।

तभी करतारा और बचित्तर बैठे हुए लोगों पर टूट पड़े। मुक्कों और घूंसों की वर्षा होने लगी। चीखों तथा खाँसी से हाल जैसे फटा चाहता था। हाये, बचाओ, मारो की आवाज़ों से वातावरण और भी भयानक हो गया था। एक नर्स जो अभी अन्दर आई थी, डर से भागकर डाक्टर के पास चली गई। उधर लड़ाई घूंसों-थप्पड़ों से बढ़कर कुर्सियों और स्टूलों पर आ गई। चार-पाँच मरीज़ भूमि पर चोटों से गिर गए थे। बचित्तर सिंह भी एक स्टूल की चोट से गिर पड़ा था। करतारसिंह अभी तक स्टूल हाथ में लेकर लड़ रहा था। तभी कुछ दूरी से एक शीशी आकर उसकी आँख में लगी। आँख से रक्त की धारा बह निकली, शीशी के टूट जाने से सारी आँख एक घाव में परिवर्तित हो गई थी और वह वहीं पर बैठ गया।

अब तक डाक्टर और दस बारह और लोग आ चुके थे।

रामलाल, विष्णुदत्त, हरिचन्द तथा बचित्तर इस झगड़े के कारण इस संसार से चल बसे। उनके रोग की तीसरी स्टेज थी, डाक्टरों ने इन लोगों की स्थिति पहले ही चिन्ताजनक बता दी थी। करतारसिंह एक आँख खो बैठा था।

उस दिन, दूसरे दिन और किसी भी दिन आरती नहीं हुई!

जप जी का पाठ भी नहीं हुआ!

करतार सिंह कुछ दिनों तक बिस्तर पर भी जप जी का जाप न कर सका!

हिन्दू मरीज बिस्तरों पर ही राम और कृष्ण का नाम लेकर मुक्ति मांगते रहे !

× × ×

ठठरी हुए ईश्वरदास ने थकी, फटी आवाज में पास वाले बिस्तर पर लेटे शिवप्रसाद से कहा—"हरि ओ३म् ! मुक्ति मिल गई उन भाग्यवानों को तो ! कितने सौभाग्य की बात है ! अहूँ···अहूँ···अख थू·· कि ईश्वर के नाम···अहूँ···अहूँ···की रक्षा···अहूँ···अहूँ···उन्होंने जीवन दे दिया ! शहीद है शिवप्रसाद, वे शहीद ! अहूँ···अहूँ···हम तो अहूँ···अहूँ···अहूँ नरक के कीड़े···अहूँ···अहूँ···अहूँ···" आगे कहने के लिये सांस समाप्त हो गया था !

---

# पहाड़ी मृणाल





आपका पूरा नाम चन्द्र-मणि वशिष्ठ और उपनाम "पहाड़ी मृणाल" है। सन् १६३१ की २८ जून को रियासत सिरमौर (हिमाचल) की राजधानी नाहन में पं० सावनराम वशिष्ठ के घर एक मध्य वर्गीय परिवार में इनका जन्म हुआ। आपके पिता रियासत में मजिस्ट्रेट थे और वे अपने पुत्र को भी माल विभाग में ऊँचा पद दिलाना चाहते थे परन्तु "पहाड़ी मृणाल" तो बचपन से लेखनी के प्रेमी और कला के पुजारी थे।

लगभग छः वर्षों तक आकाश वाणी के विभिन्न केन्द्रों में गायन, गीतकार, नाट्यकार एवं अभिनेता के रूप में कार्य करने के पश्चात् अब आप हिमाचल सरकार के लोक सम्पर्क विभाग में नाट्यशाखा के निरीक्षक है।

आपने अनेक कहानियाँ लिखी है जो अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। आपने कई सफल स्टेज-नाटक भी लिखे है।

'पहाड़ी मृणाल' जी की कहानियों में पर्वतीय जीवन का सूक्ष्म दर्शन, तीखा व्यंग और मर्मस्पर्शी वर्णन होता है और आपके नाटक जीवन के चलते-फिरते चित्र होते हैं। आपको साहित्य-क्षेत्र में प्रथम गुरू ठाकुर प्रताप सिंह नेगी और श्री "वी एस." ठाकुर का आशीर्वाद प्राप्त है।

# धरती के पार

जहाँ मुझे पहुँचना था, वह स्थान अब भी पूरे पाँच मील दूर था। घना जंगल, कंकरीली पगडण्डी, चढ़ाई, जिसके एक ओर नीचे लगातार मीलों लम्बा दरिया, दूसरी ओर गहरी खाई। अमावस की रात में, मैं ऐसे मार्ग पर चला जा रहा था। बर्फानी हवा के क़ातिल झोंके दम नहीं लेने दे रहे थे। मैं जितना तेज़ चलना चाहता था, मेरे पाँव उतने ही धीरे और भारी उठ रहे थे।

मेरी छोटी बहन निशा को मरे हुए आज पूरा सातवां दिन था। उसे बाबा ने उसके मरने से लगभग साल भर पहिले जायदाद सम्बन्धी कुछ काग़ज़ सम्भाल कर रखने को दिये थे। घर में आज किसी को भी पता नहीं था कि उसने वह काग़ज़ कहाँ रखे थे। पंडित कमल प्रसाद खोई हुई चीज़ों का पता बताने में माहिर थे। मैं बाबा के आदेश पर उन्हीं कागजों के सम्बन्ध में पूछताछ करने, उस भयंकर रात में पंडित जी के गाँव जा रहा था। उनका गाँव दस मील पैदल चलने पर भी, अब भी पांच मील दूर था। मेरे कई बार मार्ग में ही ठहरने की इच्छा हुई। बहुत पीछे मार्ग में ठहर जाता, तब तो ठीक भी था। परन्तु अब तो पंडित जी के घर तक मार्ग में ठहरने का कोई स्थान था ही नहीं। ना कोई गाँव था, ना कोई धर्मशाला ही थी मार्ग में। पहाड़ों पर तो मार्च में भी बला की ठण्ड होती है। अतः कहीं खुली जगह पर मैदान में भी आराम नहीं किया जा सकता था। उस पर बनैले पशुओं का भी तो भय था।—मैं चलता ही रहा, चलता ही रहा। लम्बे सफर ने मुझे बहुत थका दिया था।

अब चढ़ाई का एक तंग और छोटा सा मोड़ लांघकर एक चौड़ा-सा

मैदान आ गया था। चढ़ाई तो समाप्त हुई परन्तु अन्धेरा इतना हो चला था कि हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था।

परन्तु चलना तो था ही। अब मैं पर्वत की चोटी पर था। हवा शरीर को काट रही थी।—मैं चलता रहा। अभी कोई इस सीधे मार्ग पर पचास डग ही बढ़ पाया हूँगा कि अनोखे तेज़ हरे गुलाबी प्रकाश में कोई सौ पग आगे दो श्वेत तम्बू गड़े हुए दिखाई पड़े। मैं हैरान था, इस घने जंगल में उजाड़ जगह यह किसने डेरा डाला हुआ है। ख़ानाबदोश हो सकते थे, परन्तु उनके पास इतने कीमती तम्बू कहाँ होते हैं। तभी मुझे विचार आया, मार्च में प्राय: वन विभाग के अधिकारी इस ओर दौरे पर आया करते हैं। होगा कोई वन-विभाग का अधिकारी। मन ही मन में, मैं बहुत प्रसन्न हुआ कि यह रात आराम से यहाँ गुज़ारी जा सकती है। मैं आगे बढ़ गया, परन्तु इतना तेज़ प्रकाश किस वस्तु का है, यह बात अभी भी मुझे खटक रही थी।

तम्बुओं के दरम्यान खुले मैदान में, इतनी ठण्ड में एक सुन्दर युवक कुर्सी पर बैठा अपने आगे एक छोटा मेज़ रखे हुए काग़ज़ों पर लाल स्याही से कुछ लिख रहा था। मैंने चारों ओर नज़र दौड़ाई, कहीं कोई लैम्प या मशाल मुझे नज़र नहीं आया। बड़ी अनोखी बात थी, इतना तेज प्रकाश काहे का ? युवक की सूरत मुझे कुछ जानी पहचानी लगी, परन्तु दिमाग़ पर बहुत ज़ोर देने पर भी उस युवक के सम्बन्ध में कुछ सोच नहीं पाया।

कुछ क्षण तक वह लिखता रहा। फिर मेरी ओर देखकर बोला "आइए, बैठिए!"—मैंने एक बार फिर अपने चारों ओर देखा। कुछ बैठने को था ही नहीं। मैं भूमि पर ही बैठने वाला था कि तभी एक कुर्सी जो पहले मुझे वहाँ कहीं नज़र नहीं आई थी, उस युवक के पास ही रखी दिखाई पड़ी। मैं ना जाने क्यों एक बार कांप उठा था। खैर मैं बैठ गया। वह फिर लिखने में व्यस्त हो गया। मुझे अब तक सब

कुछ याद है। वह लिख रहा था, मुस्करा रहा था। उसकी मुस्कराहट असाधारण थी। मैं उस मुस्कराहट में ना जाने क्यों मृत्यु का नृत्य देखने लगा था। परन्तु मैं आज कह सकता हूँ मैं यूंही नहीं घबरा गया था। मैं तब आराम में नहीं, संकट में था। उफ ! आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं वह घटना याद करके।

कुछ समय वह लिखता रहा फिर क़लम मेज पर रखते हुए बोला—"आप पण्डित कमल प्रसाद के पास जा रहे हैं ?" मुझे आवाज़ इस बार बहुत जानी पहचानी लगी तथा इस प्रश्न पर मैं चौंका भी। इसे कैसे पता लगा कि मैं पण्डित जी के पास जा रहा हूँ फिर भी मैंने उत्तर दिया, "हाँ पंडित जी के पास जा रहा हूँ।" वह हँसा। वह हँसी ? उफ, कितनी डरावनी थी।—फिर कुछ क्षण पश्चात् बोला "वहाँ जाकर क्या कीजिएगा, वह पण्डित महाराज तो आज रात, आपके पहुँचने से पहले ठीक नौ बजे मर जाएँगे"—और वह फिर कुछ लिखने लगा।

मुझे याद आ रहा था—आज से दो वर्ष पूर्व जब मैं और निशा अपने गाँव से ४ मील दूर 'पीली' के मेले में गए थे, तो वहाँ निशा ने मुझे इसी युवक जैसी सूरत वाले युवक से परिचित कराया था। उसका नाम राज था। शहर में, मेरी बहन का कालिज में वह सहपाठी था। इसी राज का निशा ने कई बार ज़िक्र किया था। निशा को ना जाने क्या हठ हो गई थी, वह राज से विवाह करना चाहती थी। निशा जानती भी थी कि हम ब्राह्मण हैं और राज हरिजन। यह विवाह भला कैसे होगा ? फिर भी निशा ने पहले डरते-डरते फिर यूं ही बातों ही बातों में मुझसे कई बार कहा था "भय्या मुझे राज के सिवाय किसी से विवाह नहीं करना" मैं बहन को कहता "यह बात तुमने मुझसे तो कही, यदि बाबा से कही या किसी और से कही तो तुम्हारी खैर नहीं। वह औरों से तो ना कहती, परन्तु मुझे कभी-कभी अवश्य कहती""भय्या मेरा विवाह राज से ही होना चाहिए" मुझे उसकी बातों पर क्रोध भी आता। तरस भी ! क्या हो गया है इस छोकरी की अक्ल को ? 'पीली' के मेले में जब

निशा ने मुझे राज से परिचित कराया था तो मैंने उतावली में कह दिया था "मि० राज इसमें शक नहीं आप योग्य जान पड़ते हैं। परन्तु एक ब्राह्मण लड़की का हरिजन से विवाह नहीं हो सकता। समाज कभी यह बर्दाशत नहीं कर सकता।" मेरी इस बात पर वह कुछ झेंपा, शरमाया। पहिले तो धीरे धीरे बोला "दो सच्चे प्यार भरे दिलों के दरम्यान समाज दूरी नहीं बढ़ा सकता। हम मिलेंगे, इस जीवन में ना सही, उस जीवन में तो अवश्य।" उसकी बातें सुनकर मुझे क्रोध तो बहुत आया परन्तु पीगया, आस पास भीड़ जो थी। फिर ना मैंने कोई बात की, ना वह ही कुछ बोला। मैं और निशा बाजार की ओर चल पड़े और वह मेले के बाजार से उस पार हिंडोलों की ओर। हमें क्या, किसी को भी, यहाँ तक कि राज को भी स्वप्न में भी पता न होगा कि वह मेले में उसी दिन मोटर के तले आने के कारण मर जायगा। हमें घर लौटकर पता चला कि राज आज मेले में मोटर के नीचे आकर अचानक मर गया। निशा उस रोज चुपके-चुपके खूब रोई थी। दो वर्ष पश्चात् निशा भी मामूली बुखार में दम तोड़ गई थी—यह सारी घटना मेरे दिमाग़ में बिजली की तरह कौंद गई। वह युवक लिखे जा रहा था। हाँ वह राज ही था। "काटो तो लहू नहीं बदन में" मेरी यह दशा हो चली थी। तभी उसने आवाज़ दी—'निशा'

तम्बू का पर्दा उठा और मैं अपनी मृतक बहन को सामने देखकर कांप गया। मेरे मन ने कहा,—तुम क्यों प्रेतात्माओं के बीच आ फंसे। 'भूत' मेरे दिमाग़ ने मुझे झझोंड़ा। कितना भयंकर दृश्य था। जिस बहन को मैं सदा प्यार से गले लगाता रहा आज मैं उसी से डर रहा था।

राज बोला—निशा तुमने वह जायदाद के काग़ज कहाँ रखे थे ? बहन बोली—तहखाने में लोहे के नलके में।

मैंने इतना ही सुना और कुर्सी से उठकर उल्टे पाँव भाग पड़ा अपने घर की ओर। निशा आवाज दे रही थी—भय्या सुनो तो। परन्तु

ठहरना तो मेरे विचार में मृत्यु की गोद में सोना था। मैं भाग रहा था। राज ने ऊँची आवाज में जो कहा, वह शब्द मुझे अब तक याद आते हैं—"समाज के ठेकेदारों से कहना धरती के पार ऐसी जगह भी है जहाँ उनकी ठेकेदारी नहीं चलती! जहाँ उन्हें ऊँच-नीच कहने का साहस नहीं हो सकता है।"

आजतक मुझे यह घटना और वाक्य याद हैं! मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, मैं बड़बड़ाने लगता हूँ "धरती के पार, उनसे कह देना…"! और तब बाबा मुझे पागल और आज के प्रगति के युग के मेरे मित्र मुझे स्वप्नदर्शी कहते हैं। हालांकि पंडित कमलप्रसाद भी उसी रात मर गए और वह कागज भी लोहे के नलके से मिल गए। आपके मन में भी जो आए कहिए। परन्तु यह सत्य था।

---

## जन्नत जहाँ फ़रिश्ते नहीं

चाँद पूनम का, भीगी रात शबनम की। ठण्डी हवा के कातिल झोंके; चारों तरफ देवदार के ऊँचे-ऊँचे दरख़्त! उस पार टिमटिमाते चिरागों के बीच बर्फ का लिबादा ओढ़े वह नन्हा सा गाँव--जैसे दुलहिन घूंघट से झाँक रही हो। उधर बुलन्दियों से चोटियाँ बर्फ का दुधिया आँचल ओढ़े बस्ती पर झुकी आई थीं। बहुत नीचे चिंघाड़ती हुई नदिया, उसके सामने ही उस पार गुनगुनाता झरना। ऐसे वातावरण में पहुँच गया था, जन्नत की तलाश में। मुझे समझते देर न लगी कि यह वही जन्नत है जिसका ज़िक्र मैं कई बार सुन चुका हूँ। यहाँ मैं उसी जन्नत में पहुँच गया था जिसके बारे में लोगों को मैंने कहते सुना था कि यह जन्नत कभी आसमान से दो चार घड़ियों के लिये सैर की ख़ातिर धरती पर उतर आई थी मगर जिसे इस धरती पर बसने वाले उसके शैदाइयों ने कभी वापिस नहीं लौटने दिया। मेरी खुशी का ओर-छोर न था। विशाल रेगिस्तानों को लाँघकर आज मैं जन्नत में पहुँच गया था। मैं बहुत देर तक एक ही जगह खड़े होकर उस जन्नत के नज़्ज़ारे देखता रहा। मैंने फैसला कर लिया था कि यह जन्नत जो आकाश से उतर कर धरती के उभारों पर बस गई है, मैं उसी जन्नत में रहूँगा—हमेशा हमेशा के लिये यहीं रहूँगा! वापस नहीं लौटूँगा। मगर इस घने जंगल में कैसे रह सकूँगा? ठीक है मैं भी सामने वाले उसी गाँव, उसी बस्ती में रहूँगा। यही सोच कर मैं आगे बढ़ा। मैं सोचने लगा—यह तो जन्नत की हद शुरू हुई है, न जाने जन्नत उन चोटियों के पार कहाँ तक फैली हुई होगी! मेरे ख्याल में रात अभी काफ़ी बाक़ी थी मगर चाँदनी की रफ़ाक़त पर भरोसा था। अभी कुछ क़दम ही चल पाया होऊँगा कि पगडण्डी के उस पार सामने

घाटी में गीत उभरा ! गीत उभर कर वातावरण में तैरने लगा। नदिया का शोर इस गीत की गूँज को दबा न सका। मैं ठिठक गया, गीत सुनता रहा। गीत के बोल मेरी समझ में न आ सके, मगर गीत के उतार-चढ़ाव से मैं अन्दाज़ा लगा रहा था कि यह ख़ुशी का गीत है, इन्सान का नहीं फ़रिश्तों का नग़मा है। मैं बहुत देर तक गीत सुनता रहा। जन्नत की बरफ़ानी हवाएँ सर्दी की बजाए सुहानी महक दे रही थीं। अब गीत तैर कर सिमट रहा था, शायद गाने वाला घाटी से नीचे नदिया की तरफ ढलान में जा रहा था। आवाज़ को पगडण्डी के नन्हें-नन्हें मोड़ों ने अपनी लपेट में ले लिया था। गीत सिमट चुका था। मैं खड़ा खड़ा सोचने लगा—इतनी रात गए कौन गा रहा है ? कोई भी हो गीत बहुत प्यारा है ! मैं सोचता रहा। मैंने सुना था जन्नत में हूरें होती हैं—ऐसी हूरें जिनके रक्स की हल्की सी जुम्बश पर दिलों की धड़कनें पलभर के लिये थम जाती हैं और फिर यकायक जाग उठती हैं। रम्भा, मेनका और उर्वशी के विचार को लाकर मैं सोचता रहा न जाने क्या क्या ! सोचते सोचते एक ऐसी हूर मेरे ख्याल में थिरकने लगी जो साये की तरह मेरे साथ रहती है और उसकी बांहों में बांहें डालकर मैं जन्नत में सैर कर रहा हूँ। तभी मुझे किसी की आवाज़ ने चौंका दिया—"कौन हो भई ?"

सफेद उल्टी सिलाई का कोट, सिर पर हरी पट्टी की गोल टोपी और काली ऊन का पायजामा पहने, पीठ पर बोझा लादे एक खूबसूरत नौजवान मेरी तरफ़ देख रहा था। उसने दुहराया—"कौन हो ?"

मैंने कहा—"परदेसी।"

"रात को यहाँ क्या कर रहे हो ?"

"अभी अभी आ रहा हूँ, ज़रा आराम कर रहा हूँ।"

फिर उसने पूछा, "कहाँ जाओगे ?"

"उस सामने वाले गाँव में" मैंने कहा।

और फिर बातचीत का सिलसिला यों बन्ध गया—

"कोई खास काम है उस गाँव में ? किसके घर जाओगे ?"

"मैं तो परदेसी हूँ, किसी को जानता नहीं। यों ही तुम्हारी जन्नत की सैर करने आ गया हूँ भटकते भटकते", और मेरी जबान से न जाने कैसे निकल पड़ा, "मेरा कोई नहीं है। मैंने भी किसी के लिये घर नहीं बनाया। अब यहाँ पहुँच कर विचार कर रहा हूँ कि कोई छोटा मोटा काम कर लूँगा और यहीं रहूँगा।"

"तुम्हारा कोई नहीं नहीं है ?"

मैं खामोश रहा।

फिर वही बोला, "तुम हमारे घर ठहरना।"

मैंने इस बार कुछ अधिक ध्यान से उसकी तरफ देखा। वह मुस्करा रहा था—ऐसी मुस्कराहट जिसमें एक जादू था बेजर…प्यारा-सा।

मैंने सुन रखा था कि जन्नत में हर दुखियारे को शरण मिलती है। बगैर जान-पहचान दूसरों के घरों में इस तरह रहा जा सकता है जैसे अपने घरों में। जन्नत मेहमान नवाज़ी करते थकती नहीं—मैं सोचे जा रहा था। उसने टोका—"क्या सोच रहे हो ? चलो ना ! अरे चलो भी !! सर्दी नहीं लग रही है तुम्हें ?"

मैं चौंका ! वह अभी भी मुस्करा रहा था—बड़ी प्यारी, बहुत मासूम मुस्कराहट थी वह ! भटकते को आश्रय मिल रहा था, सहारा मिल रहा था। वह फ़रिश्ता था उस जन्नत का जो मुझे मेहमान बना……। मेरे दिमाग़ ने एक बार फिर मेरे दिल से कहा—यह जन्नत है। ठीक है यह जन्नत ही है—और मैं उसके साथ चल दिया। आगे वह चला जा रहा था और उसके पीछे पीछे मैं। हम चढ़ाई लाँघ रहे थे। चलते चलते वह रुक गया। उसकी नजरें दूर पहाड़ के पार

आसमान से उलझ कर वापस मेरे चेहरे पर जम गई। बोला, "भयाणू आ गया है। सुबह होने वाली है।"

मैंने पूछा, "भयाणू क्या ?"

वह हँसा, "नहीं जानते ? वह देख रहे हो न आसमान पर बडा सा तारा ? यही भयाणू है। जब यह तारा दिखाई देता है तो सवेरा होने वाला होता है।"

"मगर चाँदनी तो बहुत है" मैंने कहा।

"हाँ, आज पूर्णमासी है ना! चाँदनी तो सूरज निकलने तक रहेगी।"

रास्ता समतल था मगर गाँव जितना नजदीक दिखाई देता था उतना ही रास्ते के मोड़ उसे दूर धकेल रहे थे। जैसे रास्ता कह रहा हो—तुम गाँव के पास पहुँच कर भी गाँव नहीं पहुँच सकते। मगर राही आज तक इस रास्ते को यही कहता आया होगा—तुम लाख भुलावे दो मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगा···कभी तो तुम्हें मंजिल पर पहुँचना ही होगा।

और हम जन्नत के दो राही चले जा रहे थे मंजिल की तरफ, गाँव की तरफ।

अब ढलान थी। हम खामोश चले जा रहे थे। मैंने ही खामोशी को झिझोंड़ा—"तुम रात को कहाँ से आ रहे हो ?"

"तुम्हारी तरह बहुत दूर से नहीं, उसने कहा, पास ही घराट से आ रहा हूँ आटा पिसवा कर। कल हमारे गाँव में बड़ा मेला है। दूर दूर से रिश्तेदार मेहमान आयेंगे। असकलियाँ बनानी है सुबह।"

मैंने पूछा, "असकलियाँ क्या ?"

वह हँसा और बोला, "चावल और गेहूँ का आटा मिलाकर पत्थर के साँचों में बनती हैं, तुम्हें भी खिलाएँगे।"

फिर मैंने पूछा, "कल मेला होगा ? क्या मेला ?"

उसने समझाया, "आज रात गाँव में शिवजी का जागरण हो रहा है। हर साल इस रात जागरण होता है। देख नहीं रहे हो हमारे गाँव में कितने दिए जल रहे हैं ? जागरण की रात को हर मकान के छज्जे में रातभर दिया जलाया जाता है। सुबह मेला होगा। दिन में देवता नाचेंगे, लोग भी नाचेंगे।"

"देवता नाचेंगे ?" मैंने हैरत से पूछा।

"हाँ, हाँ, देवता नाचेंगे।"

मैं बहुत खुश हुआ यह जानकर कि देवता नाचेंगे, फ़रिश्ते नाचेंगे। "तुम भी नाचोगे ?" मैंने पूछा।

वह हँसकर बोला, "क्यों नहीं, मैं क्या सब नाचेंगे ?"

"तुम गाते भी हो !" मैंने पूछा !

"हाँ।"

"अभी अभी जब तुम मिले थे उससे पहले तुम गा रहे थे क्या ?"

"अच्छा ! तो तुम मेरा गीत भी सुन रहे थे ?"

पलभर रुककर उसने कहा, "सम्भल कर चलना, रास्ता तंग है।"

सचमुच ही रास्ता तंग था और ढलान भी बहुत थी। रास्ता फिर समतल आ गया था और अब सवेरा भी होने लगा था। डाल पर पक्षी चहकने लगे। सूरज ने पहाड़ की ओट से सर उभारा। चाँद मन्द पड़ गया। जन्नत सुर्ख़ हो गई। हम चलते रहे। सूरज थोड़ा और ऊपर खिसका तो जन्नत की सुर्ख़ी गहरी चमचमाती ज़र्दी में तबदील हो गई। चोटियों पर पिघली हुई चाँदी में कुछ सोना घुल घुल गया।

गाँव के उत्तरी हिस्से में मन्दिर में घण्टियाँ और शंख बज रहे थे।

अब हम गाँव में दाख़िल हुए। गाँव की पहली गली के सिरे पर

ही अखरोट के दरख्त के नीचे चश्मा था। चश्मे की आवाज़—जैसे कोई गवय्या भैरव राग का रियाज़ कर रहा हो और पास ही कहकहे उछालती हुई जन्नत की बेटियाँ—वे अपने घड़ों को भर रही थीं। उनके गहनों की छनछनाहट और घड़े भरने की आवाज़ ऐसी जैसे गवैये के साथ सितार और मृदंग बजाये जा रहे हों। एक पलभर उधर देखकर हम दूसरी गली के मोड़ पर हो लिये। छोटी सी बस्ती, छोटा सा गाँव और छोटी छोटी गलियाँ। रह रह कर बर्फ पर से पाँव फिसला जा रहा था। मोड़ पर हमें एक लड़का मिला। उसकी कमर में बन्धी हुई काली ऊनी डोरी के पेचों में उलझी हुई दरान्ती सूरज की रोशनी में अजीब ढंग से चमक रही थी।

लड़का बोला, "कमना !" और मेरा साथी कमना जवाब में बोला, "रमनूं !" सिर्फ एक दूसरे के नाम लेकर सलाम का ढंग मेरे लिये नया और हैरत में डालने वाला था। सच तो यह है कि यहाँ की हर चीज नई और हैरत में डालने वाली थी।

लड़का चला गया। हम कुछ आगे बढ़े। मन्दिर की घण्टियाँ बन्द हो गईं। मेरे साथी कमना ने कहा, "लो, यह आ गया मेरा घर।" और एक छोटे से दो मंजिले मकान के सामने रुक गया। मकान के सामने नन्हे से सेहन में तीन चार काले छोटे पत्तों वाले दरख्त थे जिनकी शाखों पर बर्फ जमी थी और दरम्यान में कहीं कहीं झूम रहे थे बड़े बड़े लाल लाल फल ! कमना बोला—

"क्या देख रहे हो ?"—फिर उसकी वही जादू भरी मुस्कराहट। "आओ, अन्दर आओ !"

ऊपर की मंजिल पर सिर्फ एक ही कमरा था। वहाँ थी सैना—कमना की बहन, बुढ़िया—कमना की माँ और कमना की पत्नी सुलफा। मुझे बैठने को बकरे की खाल दी गई। बुढ़िया ने अपने हाथों से मुझे गरम गरम दूध पिलाया। दूध पीते हुए मेरी आँखों से आँसू आ गए।

मुझे लगा मेरी माँ बीस बरस पहले नहीं मरी थी वह आज भी जिन्दा है—मुझे दूध पिला रही है। मेरी जबान से निकल पड़ा—"माँ !"

बुढ़िया ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और कुछ और दूध हण्डिया से मेरे लोटे में उंडेल दिया। सैना ने चूल्हे पर पत्थर की एक गोल तश्तरी, जिसमें कई खाने थे, चढ़ा दी और आटा पानी में घोलकर असकलियां बनाने लगी। कमना मेरे पास फर्श पर बैठा था। वह जन्नत की जबान में अपनी पत्नी से कुछ कह रहा था। उसकी पत्नी सुलफा बहुत उदास नज़र आ रही थी। फिर बातों बातों में पता चला कि सुलफा का बाप मृत्यु-शय्या पर है। खबर आई थी कि सुलफा को बाप ने बुलाया है। जब से उसका विवाह हुआ वह कभी बाप से मिलने नहीं गई। मैंने जब उसका कारण पूछा तो बुढिया ने कहा, "बेटे हम लोगों को इसके बाप का दोष लगता है। हमारा उसके साथ छींगा है।"

"छींगा क्या ?" मैंने पूछा।

कमना बोला, "एक बार मेरी माँ और मेरे सुसर का यों ही बातों बातों में झगड़ा हो गया। उसकी नाराजगी से हमें दोष लगा। उसी रोज से मेरा बेटा बीमार हो गया और दो चार रोज़ में मर गया।" फिर बुढ़िया एक अजीब दर्दनाक लहजे में बोली—

"तुम ही बताओ बेटे ? हमें उसका दोष लगता है। हमने देवता को साक्षी करके उससे तिनके तोड़ दिये।"

"तिनके क्या ?" मैंने पूछा।

कमना बोला, " 'तिनके' तोड़ने का मतलब यह है कि हमारा उससे अब कोई रिश्ता नहीं। न वह यहाँ आए न हम वहाँ जाएँ। बर्तन-व्यवहार हो गया तो हमारी कुशल नहीं। हम इसे कैसे भेज दें ?"

हर तरफ उदासी फैल गई और सुलफा का यह हाल कि—दर्द छलता रहा निगाहों से !

कुछ देर बाद बुढ़िया बोली, "बेटी सैना, तेरे भाई के साथ बाबू आया है, इसे अच्छी अच्छी असकलियाँ खिलाना। कल तो तू नई सुसराल चली जायेगी फिर ऐसी अच्छी असकलियाँ कौन खिलाएगा ?

"नई ससुराल !" मुझे आश्चर्य हुआ।

तभी कमना बोला, "बारह सौ दे रहे हैं ना ?"

बारह सौ का नाम सुनकर मैं एकबार फिर चौंका।

बुढ़िया बोली, "आज खत्यारु आजाएंगे, बारह सौ रुपया भी लाएंगे।"

"तब ठीक है, मैं रसीद ले आऊंगा" कमना बोला।

मुझसे न रहा गया। पूछ बैठा, "कमना भाई, कैसी रसीद ?"

बुढ़िया बोली, "बेटे, यह नई ससुराल जा रही है। इसका नया पति इसके पहले पति को १२०० रुपया देगा। कमना वह रुपया सौंप कर रसीद ले आएगा।"

अजीब बात थी ये मेरे लिये। मैंने पूछा, "यह पहले घर क्यों नहीं रहती ?"

कमना बोला, "यह तो रहना चाहती है मगर इसका पति दूसरा व्याह कर रहा है। उसे इससे ख़ूबसूरत लड़की मिल गई होगी।"

मैंने भाई कमना की ओर देखा जो मजबूरी में अपनी गुलाब जैसी ख़ूबसूरत और महक से भी ज्यादा नाज़ुक बहन को बदसूरत समझने पर मजबूर हो गया था।

मैंने पूछा, "माता जी कह रही थी खत्यारू आ जायेंगे, वह क्या ?"

बुढ़िया बोली, "खत्यारू रुपया लाने वाले को कहते हैं और खीत उस रुपये को जो पत्नी के लिये उसके पति को दिया जाता है।"

तभी बाहर ढोल-नक्क़ारों की आवाज़ सुनाई पड़ी। कमना ने मुझसे कहा—"देवता नाच रहे हैं। आओ, नाच देख आएं।"

फिर हम दोनों नाच देखने चले गए। लोग पालकियों को कन्धों

पर रखे नाच रहे थे। पालकियों में देवताओं की सोने की मूर्त्तियाँ डोल रही थीं। हम नाच देखने में ऐसे खो गए कि खाने पीने का ख्याल ही न रहा। शाम होते ही हम घर लौटे। सुलफा हमें बरामदे के पास मिली। वह रो रही थी। पता चला कि उसके बाप के मरने की खबर आ चुकी थी। अन्दर कमरे में दाखिल हुए तो एक बुड्ढा और नौजवान बुढ़िया से बातें कर रहे थे। बुढ़िया के आगे नोटों का पुलिन्दा रखा था। बुढ़िया बोली, "कमना, मैं तो तेरी बाट देख रही थी।" फिर वे जन्नत की जबान में बातें करने लगे। आधी रात गए हम खा पीकर सोये। सुलफा शाम से ही कम्बल ओढ़कर लेट गई थी। बिचारी की हालत क़ाबले-रहम थी।

मैं सो न सका। सोचने लगा कि यह कैसी जन्नत है? फ़रिश्ते बिकते हैं कभी? फ़रिश्ते कभी इतने मजबूर होते हैं कि वे दम तोड़ते हुए बाप के पास भी न जा सकें? यह कैसी जन्नत है जहाँ यह वहम हो जाता है कि नाना की बददुआ से दोहता मर जाता है? यह जन्नत है कैसी! जहाँ देवता इस बात पर अपने फ़रिश्तों से नाराज़ हो जाता है कि वे आपस में रिश्तेदारी भी न निभा सकें? मैं बहुत बेचैन हो गया। मेरा जी चाहा मैं इस जन्नत से भाग जाऊँ और मैं भाग आया।

मैं सोचता रहा। यह जन्नत! यह जन्नत कैसी जहाँ फ़रिश्ते नहीं हैं? वाक़ई यहाँ फ़रिश्ते नहीं, ये तो इन्सान हैं जिनमें इन्सानों की सी बातें हैं। अगर यहाँ फ़रिश्ते नहीं तो इसे लोग जन्नत क्यों कहते हैं? हर आदमी इसे जन्नत क्यों समझता है? हज़ार ख्याल मेरे दिल में आए। नहीं, यह जन्नत तो है मगर यहाँ फ़रिश्ते नहीं। तो क्या यहाँ बहुत अरसे से इन्सान बसता आया है? फ़रिश्ते कोई नई जन्नत बसाने चले गए हैं? तब तो जन्नत पहाड़ों से ऊपर उसी आसमान में ही होगी। मैं आजतक कुछ फैसला न कर सका!

---

बर्फ के हीरे

शीर्षक से

हमारे कहानीकारों की लघुकथायें

मेरी एक कहानी का बंगला अनुवाद लोगों ने बहुत पसन्द किया था। अनेक बधाइयाँ मुझे प्राप्त हुई थीं। लेकिन मुझे इससे कोई विशेष सुख नहीं मिला था। सुख मिलता भी कैसे ? रचयिता की रचना पर दूसरे ही लेखक का नाम छपने के बाद भी क्या कोई अपनी रचना के प्रकाशन पर प्रसन्न हो सकता है ?

मैं बेकाबू हो गया अपनी बौखलाहट से। तुरन्त ही सम्पादक का ध्यान 'हिमालयन ब्लण्डर' की ओर दिलाने के लिए आवेशपूर्ण पत्र लिखा। एक सप्ताह उपरान्त सम्पादक का जो उत्तर आया उसने मेरे 'अहं' को झिझोड़ कर रख दिया।

लिखा था :—

प्रिय साहित्यिक डाक्टर बन्धु !

आपका आवेश-स्नेह से सराबोर पत्र मिला। आजकल कुछ लेखक-पाठक तो ऐसे हैं जो पत्रिका आने पर सूची में केवल अपनी रचना ही खोजते हैं। काश ! आप सूची के बाद अंक के नवीन लेखकों का परिचय भी पढ़ लेते।

खैर, उम्मीद है आइन्दा ऐसा पत्र लिखने की सामग्री आप नहीं जुटा सकेंगे।

आपका ही,

...............

पत्र को एक कोने में फेंक मैंने पत्रिका सम्भाली। परिचय पृष्ठों को पढ़ते-पढ़ते पहुँच गया अपने परिचय तक। लिखा था—

"हिमाचल की साहित्यिक खान से कुछ नए हीरे बाहर आये हैं। उनमें से एक हीरा हैं विद्रोही लेखक 'अमुक जी'। मैं लेखक को बर्फ

का हीरा नाम देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। 'अमुक जी' की रचनाओं में कुफरी की स्कीइंग का सा प्रवाह है, उतार-चढ़ाव है और है अपने पात्रों को स्थित्यानुकूल ढालने की क्षमता।"

...खैर मैं सोच रहा था, कितनी झिलमिल होगी धरती पर जब मिलकर चमकेंगे ये बर्फ के हीरे।

—*देवेन्द्रकुमार बंसल एम. ए.*



भूरी मिट्टी हवा के झोंकों से उड़-उड़ कर किसी के मुख में जाती तो उनका स्वाद नष्ट हो जाता। किसी के नाक में जाती, उसका साँस रुकने लगता। किसी की आँखों को ढकने का प्रयत्न करती तो उसे धुँधला-धुँधला दिखाई देने लगता।

मानव को हरा कर भूरी मिट्टी सोचती—मैं बहुत शक्तिशालिनी हूँ, मुझसे लोग डरते हैं। अभिमान में चूर ऊपर ही ऊपर उठती मिट्टी बर्फानी चोटियों तक जा पहुँची। चमचम करते बर्फ के हीरों को मैला करने का उसने प्रयत्न किया—बर्फ के हीरे हँस दिए और मिट्टी का मान तोड़ने के लिए हजारों नदियाँ उन्होंने बहा दीं। मिट्टी नदियों में घुल गई, नदियों ने उसे हमेशा-हमेशा के लिए बन्द कर दिया—मिट्टी वहाँ से कभी नहीं निकल सकती क्योंकि सागर अपनी मर्यादा कभी नहीं छोड़ता—बर्फ के हीरे—तब से मिट्टी की नादानी पर हँसते हैं।

—*खेमराज गुप्त*



एक दिन बादल ने पवन से पूछा—"हे पवन! तुम सर्वव्यापक हो। अतः सर्वज्ञ हो। क्या मुझे यह बतलाने का कष्ट करोगे कि तुम्हें मेरा कौन सा रूप सर्वाधिक प्रिय है?"

पवन कुछ क्षणों के लिए उलझनों में पड़ गया। उसे प्रश्न का कोई उचित उत्तर जब न मिला तो उसने कहा—"हे जलद! तुम्हारे

सभी रूप परोपकारी होने से असाधारण महत्वशाली हैं। मुझे तो सभी रूप समानरूप से प्रिय हैं।"

"नहीं पवन ! वर्षा, जल, बिन्दु, नद-नाले, झरने, स्रोत-सागर, हिम, मोती आदि-आदि अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं। सब का समान महत्व कैसे हो सकता है ? इनमें से तुम्हें कौनसा रूप सर्वाधिक प्रिय है ? यही जिज्ञासा है मेरी।"

पवन बिहँसता बोला—"हे पयोधर ! मुझे तो 'बर्फ के हीरे' वाला रूप सर्वाधिक प्रिय है।"

"सो क्यों ?"—बादल ने पूछा।

"इसलिए कि यह रूप सर्वाधिक सरल, मधुर और छविमय है—नित नवीन है, नयनाभिराम है। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही देवता, ऋषि-मुनि, सन्यासी और योगी तुम्हारी इस छवि से आकृष्ट हो हिमालय की पूत-पावन तपोभूमि में तप करते रहे।" कह कर पवन चुप हो गया।

*—वंशीधर पाठक 'जिज्ञासु'*



भूगोल के छात्र जानते हैं कि संसार में हीरे अधिकतर दक्षिणी अफ्रीका में "कम्बरले" के स्थान पर होते हैं और उनकी कटाई का काम हालैण्ड में "एमस्ट्रडैम" के नगर में होता है। "कोहेनूर" का नाम भी आपने सुना होगा, अभागा जहाँ-जहाँ भी पहुँचा अपने साथ तबाही और बरबादी लेता गया··· हीरे सभी बेकार हैं··· जो केवल चमकते हैं परन्तु खाए नहीं जा सकते। खाना तो रहा एक तरफ तनिक चाट कर तो देखिये। परन्तु ऐसा करने से पहले अपनी जिन्दगी का लम्बा चौड़ा बीमा करवाना न भूलिएगा वरना बीवी बच्चे आपकी आत्मा को दुआएँ देते फिरेंगे।

अजी हीरे बर्फ के ! बाकी सब नकली ! आप चौंकिए नहीं । बर्फ के हीरे किसने नहीं देखे या चखे । इनका आनन्द लेना हो तो इन्हें चबा जाइए और खा जाइए । रोटी में डाल कर खाइए या रोटी के ऊपर रख कर, आग में भून कर खाइए या पानी में उबाल कर अथवा किसी भी सब्जी में मिला कर खाइए तबीयत साफ हो जाएगी । इन्हें कटवाने के लिए हालैण्ड नहीं जाना पड़ता । हर घर में आसानी से कट और बट सकते हैं । बर्फ के हीरे वैसे तो हर जगह मिलते हैं परन्तु शिमला की घाटी में ठियोग के आस पास इनकी पैदावार खूब होती है । अब भी नहीं समझे तो भगवान आपको अक्ल की बजाए आलू दे ।

*—डी० राज 'कंवल' एम० ए०*



प्रकृति की पुत्री हिमकन्या ने जब सुना आज फैशन का युग है संसार में आज एक नहीं अनेकों फैशन प्रचलित हो चुके हैं ऐसे ऐसे फैशन जिन्हें देखकर अक़ल दंग रह जाती है, महिलायें जो वस्त्र पहनती हैं उन्हें देखकर लगता है कि उन्होंने केवल पवन ओढ़ रखी है ।

और···तभी हिमकन्या चमकीले हीरों का हार पहनकर दुनिया की सैर को निकली—एक क्लब में जब वह पहुँची तो किसी ने उसके कंधों पर हाथ रखकर पूछा—"बड़ा सुन्दर हार है आपका, कहाँ से बनवाया है आपने ? जरा दिखाइये तो !···

न न इसे न छूना बहन । इसे तो वही छू सकता है जो सच्चा हो, केवल एक बार प्यार करता हो ।

मैं भी ऐसी हूँ बहन—

तो बेशक छू लो—

ज्यों ही उसने हिमकन्या के हार को छुआ—टप टप करती मोती जैसी बूंदे उस हार से टपक पड़ी बर्फ के हीरे-से कणों वाला हार मोती

उगल रहा था'''बर्फ के हीरे रो रहे थे।

*—कलावती ठाकुर*



हेमन्त की सन्ध्या स्वच्छ हो चली थी। आकाश किसी के सूने नेत्रों के समान खुला एकटक धरती पर प्रकृति के श्रृंगार को देख रहा हो मानों। गोधूलि के धुँधले प्रकाश में काली काली रेखाओं सी पर्वत मालाएँ और उनके पीछे श्वेत विशाल हिमाचल मानों एक उज्ज्वल यवनिका के समक्ष दर्शक स्थिर भाव से बैठे हों। ऊपर आकाश पर तारे छिटक रहे थे, स्वच्छ बर्फ के हीरों के समान। गोधूलि बीत चली, किन्तु अन्धकार आभा की उस देह को मिटा देने में अब भी असमर्थ था।

एक ओर घाटियों में था नदी नालों का चंचल हास्य—दूसरी ओर थी गहरी नीरवता—मानों प्रवाह से पूछ रही हो ? तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? प्रकृति में—कवियों के लिए काव्य था, चितेरों के लिए छवि थी और प्रेमियों के लिए एकान्त। कल्पना और यथार्थ का संगम था, किन्तु दोनों मौन थे।

*पर्वतों की उपत्यका से सटी—एक छोटी सी बस्ती के किसी छोटे* से घर में—कृषक नववधू अभी-अभी पशुओं को चारा डालकर लौटी थी। पति विभोर होकर उसकी बिखरी लटों पर अटके हिम-हीरकों को देख रहा था, शायद उसका दरिद्र जीवन वैभव की कल्पना कर उठा था। युवती ने झिरक कर लटों को झाड़ दिया। मानो कहा हो, 'वैभव स्थिर नहीं', सूनी कलाइयों पर चिपकी चाँदी के चूड़ सी बर्फ को पोंछकर अपनी कलाइयों का हार पति के कण्ठ को पहना दिया। वास्तव में बाहों में श्रृंगार नहीं प्यार होना चाहिये।

दीपक के मन्द किन्तु स्निग्ध प्रकाश में, वह छोटा सा प्रकोष्ठ पुरुष और प्रकृति के उन्मुक्त हास्य से मुखरित हो रहा था। काश ! कवि

सुन पाता तो उसे ज्ञात होता कि, जीवन और प्यार की सरल अभिव्यक्ति कैसे होती। चितेरा देखता तो जान पाता कि स्नेह का जरा सा आलोक ही जीवन को कैसे चमका देता है। काश ! कल्पना बर्फ के इन दो हीरों को देख पाती तो सौंदर्य के दर्शनों के साथ-साथ कृत्रिमता से हमेशा के लिए छुटकारा पा लेती।

*—रामकुमार काले 'सन्यासी'*



कैलाश से होड़ लेती गगनचुम्बी, पुरग्युल की धार पर, स्वेत फनिल बर्फ के फाहे बरस रहे थे उस पर, नीलम का राजा कभी-कभी बिजलीसी चमका देता था और मैं था, हर-हर करती हजारों फुट गहरी वेगवती शतद्रु के बायें कछार पर। अनोखी लीला थी प्रकृति की—पुरग्युल ही पर बादल थे, बिजली थी, और थी बर्फ की वर्षा। जहाँ मैं था वहाँ चाँद मुस्का रहा था—मानों कह रहा हो—साधक साधना न छोड़ना—अन्धेरा—उजला तो लगा ही रहता है, एक न एक दिन भोलेनाथ अवश्य पधारेंगे तेरे घर। और बेचारा पुरग्युल ? वह तो बाल्मीकि ही बन गया था, मानो उसमें गूँजते हुये पवन के झोंके मरा-मरा के ही जाप की प्रतिध्वनि हो। उसकी क्षतविक्षत दरारों से जल धारा ऐसे बहती थी मानो चाँदी की चमकीली सरिया कोई खींच रहा हो—अथवा प्रकाश से जगमगाती लम्बी रौड किसी ने वहाँ फिट की हो ? अद्भुत····एकदम चमत्कार कैलाश जितनी ऊँचाई पर भी बर्फ टिकती न थी–घण्टे भर में ही वह सागर का खारा जल–मीठा अमृत बनकर झर-झर करता हुआ कल-कल निनादिनी शतद्रु में आ मिलता था। मन सोचते-सोचते कल्पना लोक में पहुँच गया—और निहारने लगा उस दृश्य को जिसमें दो दो कन्दरापति शैल शिखर कैलाश और पुरग्युल भगवान चन्द्रशेखर की आवास व्यवस्था में व्यस्त थे—वनराजी उनके इशारों पर नाच रही थी—अनंग मदन-दहन के

बाद भगवान त्रिलोचन का पूर्ण पुजारी बन गया था—उसके सुमन शर भले ही अन्य जगत को मदन तरंग में मस्त बनाते हों, किन्तु आशुतोष के तो चरणों में ही सौरभ बिखेर रहे थे। लगता था—ऋतुराज की बासंती प्रभा भगवन बन लहरी को ऊर्ध्य दे रही हो—थोड़ी ही देर में मेरी दुन्दुभी का प्रणय गूँज उठा और गूंज उठा पशुपतिनाथ के नंदी की कंठ घंटियों का स्वर···घननघन घननघन। सुर—सरिता उधर मान-सरोवर से, शतद्रु इधर पुरग्युल से हर-हर महादेव की पुनीत स्वर लहरी से वन्दना करती हुई उमड़ चली—भगवान भूत भावन की पहली दृष्टि पुरग्युल पर ही पड़ी, कैलाश मन ही मन जल मरा—शाप दे गया—जा दुष्ट तेरा वह वैभव ही नष्ट हो जाये जो महादेव भगवान शंकर को प्रिय है—तुझ पर हिमपात तो निरन्तर होगा—किन्तु टिकेगा नहीं—क्योंकि तेरे गर्भ में हीरों की खान अपनी ऊष्णता का चमत्कार दिखायेगी" पलक मारते ही पुरयुग्ल की श्री-शोभा, पंछियों का कलरव-वनश्री न जाने कहाँ विला गई—और तब उस अप्रत्याशित हार पर फफक पड़ा पुरग्युल ! जो आज भी भारत तिब्बत के सीमान्त पर खड़ा बिलख रहा है—काश कि कोई उन बर्फ के हीरों को वहाँ से निकाल लेता तो पुरग्युल की युगों की साध तो पूरी हो जाती—और मैं यही सोचते-सोचते अपनी राह लौट पड़ा—हाय बर्फ के हीरे।

*—जयदेव शर्मा 'कमल'*



उत्तर से तेज़ बर्फानी हवा चल रही थी। सूरज के ढलने के साथ ही हवा और तीखी हो गई, बारिश भी होने लगी। बारिश की बूँदें बर्फ के टुकड़ों की तरह चुभ रही थी। भीड़ छटने लगी। बाज़ार खाली सा होने लगा।

रामू प्रायः खाली भीगी सड़कों की ओर देखता रहा—उसके लिये आज की सारी शाम बेकार हो गई थी। उसके सिर में कुछ दर्द सा

होने लगा था। गले से लटकी हुई उसकी छोटी दुकान आज एक पहाड़ के बोझ सी लग रही थी,······क्या करे वह······आज वह जल्दी घर लौटेगा······माँ की याद न जाने क्यों बार बार आ रही थी।······ सिर का दर्द शायद बढ़ रहा है—सारा सिर घूमने सा लगा, क्या सारी दुनिया घूम रही है? ये बाजार, ये मकान, यह आसमान काला, बादलों से घिरा हुआ—सब घूम रहा था।······बच······बच······ बचके······।

एक लड़का मोटर के नीचे आ गया था। धरती लाल हो गई थी। कुछ कंघे, बटन, फीते और बच्चों के खिलौने, सड़क पर बिखर गये।

भीड़ इकट्ठी हो गई। 'अभी सांस है, इसे हस्पताल भिजवा दो', किसी ने सहानुभूति प्रकट की। किसी ने कार वाले का कसूर बताया किसी ने लड़के का। मोटर के मालिक ने कहा 'पैदा करके छोड़ देते हैं सड़कों पर।' पुलिस आई।

हस्पताल।

डाक्टर ने कहा 'असम्भव है, बच नहीं सकता, सिर बिल्कुल चूर-चूर हो चुका है' दो घण्टे बाद दिया बुझ गया।

किसका लड़का है? भीड़ छट गई, लावारिसों की सूची में रामू का नाम चढ़ गया शाम को तुषारपात हुआ, दो हीरे वहीं जमे रहे।

इधर रात बढ़ रही थी। बारिश रुक गई थी। उत्तर से तेज बर्फीली हवा चल रही थी मानो हवा चीख चीख कर रो रही हो और एक माँ किसी अंधेरी कोठरी के दरवाजे पर खड़ी राह देख रही थी। उधर एक अतृप्त आत्मा अपनी माँ के पास पहुँचने के लिए शहर की पाषाण प्राचीरों पर ठोकरें खाती हुई भटक रही थी। उसके करुण आह से आज फिर वसुधा सहम गई होगी······।

रामू······क्या वह लौटेगा?

कार्तिकचन्द्र दत्त

बोझिल पवन ने जब बर्फ को सोते देखा, तो झुंझला उठा। "तुम आगए", हड़बड़ा कर उठते बर्फ ने कहा, "मैं तो निराश हुई जा रही थी, तुम अब नहीं आओगे।" "मैं तो आ रहा था, रास्ते में ज़िन्दगी ने मुझे रोक लिया, वह मानव के पास जाने से डर रही थी, इसलिए उस की सौगातें भी मुझे ही लानी पड़ीं, आओ अब चलें, बहुत देर हो चुकी है।" बर्फ हीरे और मोतियों को आंचल में बाँध साथ चल दी।

पर्वतों को पार करके वे एक झोंपड़ी के पास पहुँचे, दोनों झिझक रहे थे, कौन आगे बढ़े? पवन ने धीरज बाँध पग आगे बढ़ाए, और मानव के कन्धे पर हाथ रखा। "कौन", वैसे ही पड़े मानव ने कहा। "उठो, मैं तुम्हारे लिए ज़िन्दगी से सौग़ातें खुशियों में समो कर लाया हूँ।" मानव सिहर उठा, अन्धी आँखों में कितनी चमक थी। "मैं हीरे और मोती ले कर आई हूँ', बर्फ ने कोमलता से कहा। मानव का मुख विजय गर्व से दमक उठा, एकाएक अट्टहास हुआ, वादियां गूँज उठीं। "तुम अब आ रहे रहो", मानव ने कहा, "जब मेरी नसों में रक्त काला पड़ चुका है, निराशा की वेदी पर मेरा सब कुछ बलिदान हो चुका है, तुम जाओ, चले जाओ, मुझे अब कुछ नहीं चाहिए।" भीषण गर्जन, और दहकते अंगारों को बर्फ न सह सकी, बाहर लपकी, पवन भी लड़खड़ा कर पीछे हटा, बर्फ से टकरा गया, आंचल से हीरे बिखर गए···मानव हंसता रहा···ज़ोर-ज़ोर से हंसता रहा···

*—जगतमोहन सिंह 'अचल'*



पं० मस्तराम अभी गाँव से कुछ दूर ही गया था कि वह ठिठक गया—

झाड़ी के नीचे बर्फ के ऊपर दो शिशु, आयु केवल एक रात भर होगी—चाहे कुछ घण्टे—नंगे पड़े थे। जीवन उनसे रूठ गया था। वे ठण्डे थे बर्फ की तरह—नहीं, नहीं, बर्फ के दो हीरों की तरह।

मस्तराम की आँखों से दो आँसू लुढ़क पड़े।

वह ज्योतिषी था और उसने हरिराम को बताया था कि यदि वह अपने होने वाले शिशु का मुख देखेगा तो मृत्यु हो जाएगी—यह पत्थर की लकीर थी।

मस्तराम की कृपण आँखें तीसरा आँसू न बहा सकीं।

सूरज के पीले मुँह ने सुदूर पहाड़ की चोटी के पीछे से झाँका—झरने रो रहे थे, हवा स्तब्ध थी, पक्षियों का दम घुट रहा था। आकाश के मुख पर भी विषाद के बादल छा गए और रो दिया। बादल के एक झरोखे से सूरज के शीशे में अपने निष्ठुर और निर्दयी रूप को देखकर बर्फ भी रो दी ! ! !

—रतनसिंह 'हिमेश'



तूफानी रात थी वह, जब कमांडर दिलीप को सूचना मिली। "आज दोपहर तक उत्तर पश्चिमी सीमा पर सात फुट बर्फ गिर चुकी है। पांचवीं टुकड़ी के आठ सैनिकों का कोई पता नहीं। शायद वह दब गये हैं।" कमांडर रात भर सो न सका।

२५ जनवरी को सात सैनिक, पाँचवीं टुकड़ी के, लौ. आये थे। कमांडर उन्हें जीवित देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु नरेन्द्र बहादुर कहाँ है? वह कहाँ रह गया?—नरेन्द्र बहादुर २१ अप्रैल तक नहीं लौटा।

२२ अप्रैल की दोपहर को कैम्प से साठ मील दूर कमांडर, सैनिकों को विभिन्न स्थानों पर सीमा की रक्षा के लिए ड्यूटी पर लगा रहा था। मौसम खुल चुका था। बर्फ पिघल कर तीन फुट रह गई थी। दुश्मन सीमा लाँघ सकता था। दोबारा मोर्चे की तय्यारी थी।—सब ने देखा, एक बर्फ का बड़ा तोंदा सहसा एक ऊँचे स्थान से, पास ही टूट

कर खड्ड में लुढ़क गया। खाली जगह पर अब एक काली चट्टान का थोड़ा सा छोर नज़र आ रहा था और उससे कुछ पीछे बर्फ में चमक रहे थे पास-पास दो छोटे-छोटे तेज सुर्ख दो हीरे से। कमांडर के पास ही तो चमक रहे थे यह दो हीरे ; वह आगे बढ़ा। उसने धीरे से उन्हें टटोलना चाहा। कुछ बर्फ सरकी और हीरे ओझल हो गये। कमांडर ने बर्फ हटवाई। चट्टान पर थी औंधे मुँह नरेन्द्र बहादुर की आधी गली सड़ी लाश ! और वह दो हीरे थे उसकी आँखें ! जो अभी तक सीमा के पार दुश्मन की हर हरकत भाँप रही थीं। कुदरत ही इन जैसे हीरों को सम्भाल सकती है। मानव ने हाथ बढ़ाया नहीं के चूर हुए यह हीरे ! बर्फ के अनोखे हीरे !

—'पहाड़ी मृणाल'